श्रेणी 6- हिन्दी

	अंक	पृष्ठ क्रमांव
सूत्र	30	1 से 20
तत्व विभाग - संस्कार विभाग	50	21 से 60
कथा विभाग	10	61 से 73
काव्य विभाग	10	74 से 81

1. सूत्र विभाग

प्रतिक्रमण - पाठ 23 : आलोचना तथा प्रथम श्रमणसूत्र

प्र-1 : 18, 24, 120 प्रकार से पाप-दोष लगते हैं, वह कौन कौन से ?

उ-1 : ये पाप दोष मुख्यतः हिंसा आदि दोषों के कारण लगते हैं। इसके गणना-क्रम निम्न प्रकार से हैं:

हींसा आदि दोष	कितने प्रकार	सब मिल हुए
1. सांसारिक जीवों के भेद	563	563
2. उन जीवों की हिंसा अभिहया से जीवियाओ ववरोविया आदि 10 प्रकार से होती है	563 × 10	5630
3. यह हिंसा राग या द्वेष से होती है	5,630 × 2	11,260
4. मन, वचन, काया - तीन योगों से होती है	11,260 × 3	33,780
5. करना, करवाना, अनुमोदन करना 3 करण से	33,780 × 3	1,01,340
6. भूत, भविष्य, वर्तमान - इन 3 कालों में होती है	1,01,340 × 3	3,04,020
7. अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु तथा अपने आत्मा की साक्षी से मिच्छामि दुक्कडं	3,04,020 × 6	18,24,120

प्र-2 : आलोचना में प्रयुक्त 'खलाए', आदि शब्दों का अर्थ लिखिए।

उ-2 : खलाए: भूलवश (स्खलन द्वारा) **ध्रीठाए:** तिरस्कारवश, **आपथापना:** मनमानी से **परउथापना:** दूसरों को अपमानित या दुःखी करने से, **ममते:** ममत्व से, अपनेपन के भाव से।

प्र-3 : श्रमणसूत्र क्या होता है?

उ-3 : चतुर्विध संघ रूप साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका, के लिए जो विशिष्ट प्रायश्चित्त सूत्र हैं - उन्हें श्रमणसूत्र कहते हैं।

प्र-4 : श्रमणसूत्र किन-किन को करना चाहिए?

उ-4 : चतुर्विध संघ - साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका - सभी को करना चाहिए। (1) श्री भगवती सूत्र के 20वें शतक के 8वें उद्देश में '**चउव्विहे समणसंघे पन्नत्ते**' कह के साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका इस चतुर्विध संघ को एक 'श्रमणसंघ' कहा गया है। (2) अतः सिर्फ साधु के लिए नहीं किंतु श्रावक के लिए भी आगम में '**श्रमण**' शब्द का प्रयोग किया गया है। (3) श्रावक देश श्रमण और साधु पूर्ण श्रमण

होते हैं। (4) श्रावक जीवन में एकबार लेने वाली संलेखना जब हम प्रतिदिन बोल सकते है, तो प्रतिदिन श्रमणसूत्र बोलने में भी कोई दिक्कत नहीं। (5) दसवा व्रत, पौषधव्रत, दयाव्रत आदि करनेवाले श्रावक निद्रा दोष, गौचरी दोष, प्रतिलेखना या स्वाध्याय दोष आदि से मुक्त होने हेतु प्रथम तीन श्रमण सूत्रों का प्रयोग कर सकते हैं। (6) चौथा श्रमणसूत्र **श्रद्धा, प्ररूपणा और स्पर्शना** संबंधी है। (7) पाँचवा श्रमणसूत्र निर्ग्रंथ प्रवचन के महत्व और श्रद्धा की विशुद्धि करने संबंधी है, जो चतुर्विध संघ के लिए अत्यंत आवश्यक है। इसलिए पाँचो श्रमणसूत्र चतुर्विध संघ को अवश्य करना चाहिए।

प्र-5 : प्रथम श्रमणसूत्र किस विषय में है?

उ-5 : प्रथम श्रमणसूत्र- निद्रा दोष से निवृत्ति हेतु है। यह पौषधव्रत, रात्रिसंवर आदि के अंतर्गत निंदसे उठने के बाद कायोत्सर्ग द्वारा निद्रा दोष का प्रायश्चित्त करने हेतु बोला जाता है।

प्र-6 : प्रथम श्रमणसूत्र का उपयोग कब करना होता है?

उ-6 : (१) प्रातःऔर सायं के प्रतिक्रमण में इसका पाठ करना चाहिए। (२) निद्रात्याग के तुरंत बाद भावशुद्धि के लिए चार लोगस्स एवं प्रथम श्रमणसूत्र का कायोत्सर्ग करना चाहिए। फिर क्षेत्र-विशुद्धि हेतु इरियावहिया सूत्र का कायोत्सर्ग करना चाहिए।

प्र-7 : निद्रा में कौन-कौन से दोष लगते हैं?

उ-7 : निद्रा में मन, वचन एवं कायासे संयम मर्यादा के बाहर कोई भी कार्य होने की संभावना है। जैसे कि **मन से:** स्वप्न में मैथुन भाव, द्रष्टिसे या मनसे क्रीडा की हो। भोजन-पेय की इच्छा की हो। **वचन से:** नींद में अनियंत्रित वाणी **काया से:** बिना पूंजे हाथ-पैर फैलाना, सिकोड़ना, अयत्नासे खांसी, छींक, खाना, किसी जीवको शरीरके निचे दबो देना, शरीर खुजाना आदि दोष लगते हैं।

प्र-8 : व्रत के दौरान रात्रि में सोते समय क्या सावधानी रखनी चाहिए?

उ-8 : व्रत के दौरान रात्रि में सोते समय निम्न लिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए।

(1) नींद को प्रमाद समझ कर कम करना चाहिए। रात को अधिक से अधिक धर्मध्यान, धर्मजागरण करना चाहिए। (2) बिछाने एवं पहनने के वस्त्र, रात को सोने की जगह... आदि का दिन में प्रतिलेखन करना चाहिए। (3) शयन स्थल को पोंज कर बिछाना करना चाहिए। (4) शरीर को पोंजकर बिछाने में जाना चाहिए। (5)

सोने से पहले नमस्कार मंत्र, लोगस्स, आदि सूत्र का स्मरण या कायोत्सर्ग करना चाहिए। (6) सोते समय भी मुहपत्ति धारण करनी चाहिए। (7) बिना पूंजेन करवट न बदलें, हाथ पांव को न फैलाएँ न संकुडे। (8) सुबह उठकर प्रथम श्रमणसूत्र का कायोत्सर्ग करें। (9) जो वस्त्र/ बिछाना रात में उपयोग सें लाए हुए हों उनका दिन शुरु होने पर फिर से प्रतिलेखन करें।

अपेक्षित प्रश्न:

1. छींक, उबासी आदि के शब्द प्रतिक्रमण के किस पाठ में आते हैं?
2. स्वप्न में दोष लगने का संकेत किन शब्दों से मिलता है?
3. प्रथम श्रमणसूत्र का नाम क्या है?

पाठ 24 : दूसरा श्रमणसूत्र

प्र-1 : गोचरचर्या क्या है? भिक्षाचर्या क्या है?

उ- 1 : गाय आदि पशुओं का चरना, थोड़ा-थोड़ा ऊपर-ऊपर से खाना- उसे गोचर कहते हैं। इसके लिए गाय इधर-उधर घूमती है, इसलिए इसे गोचरचर्या कहते हैं। गाय तो अदत्त को भी ग्रहण करती है और उसमें छकाय जीवों की हिंसा भी होती है। साधु तो गृहस्थों और छकाय जीवों को पीड़ा दिए बिना केवल दिया हुआ आहार-पानी ही ग्रहण करते हैं, इसलिए इसे भिक्षाचर्या कहा जाता है। अर्थात्, साधु-साध्वी की गोचरचर्या रूप भिक्षाचर्या होती है।

प्र-2 : दूसरा श्रमणसूत्र किस विषय में है?

उ- 2 : गौचरी में लगने वाले दोषों से निवृत्ति के विषय में है।

प्र-3 : दूसरा श्रमणसूत्र कब बोलना होता है?

उ- 3 : (1) चतुर्विध संघ द्वारा सुबह और शाम के प्रतिक्रमण में, (2) साधु-साध्वी द्वारा गौचरी करके लौटने के बाद गौचरी में लगे दोषों की शुद्धि हेतु इस पाठ को और ईरियावहिया पाठ को एवं (3) दशम व्रत धारक श्रावक-श्राविकाओं द्वारा गौचरी लाने के बाद कायोत्सर्ग में यह पाठ बोला जाता है।

प्र-4 : मंडि पाहुडियाए दोष क्या है?

उ- 4 : तैयार भोजन का पहला थोड़ा भाग पुण्य हेतु किसी बर्तन में अलग निकालकर रखा जाता है, उसे अग्रपिंड कहते हैं। ऐसे अग्रपिंड को गौचरी में लेना मंडि पाहुडियाए दोष है। क्योंकि वह पुण्य हेतु निकाला गया होता है, इसलिए साधु को लेना निषिद्ध है।

प्र- 5 : बलि पाहुडियाए दोष क्या है?
उ- 5 : देवता आदि के लिए पूजन हेतु तैयार किया गया भोजन **'बलि'** कहलाता है। इसे लेना **या** साधु के गौचरी पर आने पर अग्नि व चारों दिशाओं में बलि फेंककर दिया गया भोजन लेना- बलि पाहुडियाए दोष है। इसमें आरंभ होता है, इसलिए निषेद्ध है।
प्र- 6 : ठवणा पाहुडियाए दोष क्या है?
उ- 6 : साधु के उद्देश्य से या अन्य भिक्षु हेतु अलग निकाला गया भोजन यदि ले लिया जाए, तो वह दोष ठवणा पाहुडियाए कहलाता है।
प्र- 7 : पश्चात् कर्म दोष और पुर: कर्म दोष क्या है?
उ- 7 : साधु-साध्वी को आहार देने के बाद उस हेतु सचेत जल से हाथ या बर्तन धोने से लगने वाला दोष - **पश्चात् कर्म** दोष कहलाता है। आहार देने से पहले सचेत जल से हाथ या बर्तन धोने से जो दोष लगता है - वह पुर: कर्म दोष है।
प्र- 8 : इस पाठ में पृथ्वीकाय, अपकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय की विराधना दर्शाने वाले शब्द कौन-कौन से हैं?
उ- 8 : पृथ्वीकाय: रयसंसट्ठहडाए। **अपकाय:** दगसंसट्ठहडाए। **वनस्पतिकाय:** बीयभोयणाए और हरियभोयणाए। **त्रसकाय:** साणा वच्छा दारा संघट्टणाए और पाणभोयणाए।
प्र- 9 : गौचरी करते समय किस से कौन-कौन से दोष लग सकते हैं?
उ- 9 : उद्गम के 16 दोष - गौचरी देने वाले गृहस्थ से लगते हैं। उत्पादन के 16 दोष - गौचरी ग्रहण करने वाले साधु से लगते हैं। एषणा के 10 दोष - गृहस्थ व साधु दोनों से लगते हैं। कुल = 42 दोष लग सकते है।
प्र-10 : कौन-से श्रावक गौचरी करने जा सकते हैं?
उ-10 : दसवा व्रत धारण करने वाले अथवा 11वीं श्रमणभूत पडिमा धारण करने वाले श्रावक गौचरी करने जा सकते हैं।
अपेक्षित प्रश्न:
(1) बिखरा-गिरा हुआ आहार लेने पर कौन-सा दोष लगता है?
(2) बिना कारण वस्तु माँगने पर कौन-सा दोष लगता है?
(3) गौचरी में किन को लांघकर नहीं जाना चाहिए?
(4) दूसरे श्रमणसूत्र का नाम क्या है?

पाठ 25 : तृतीय श्रमणसूत्र

प्र-1 : तृतीय श्रमणसूत्र किस विषय संबंधित है?

उ- 1 : स्वाध्याय और प्रतिलेखन में लगे दोषों से निवृत्त होने के संबंधित है।

प्र-2 : काल प्रतिलेखन का क्या अर्थ है?

उ- 2 : प्रतिलेखन का अर्थ है- देखना। प्रतिक्रमण के बाद आगम की मूल गाथाओं का स्वाध्याय करने से पहले यह देखना कि आकाश आदि से संबंधित कोई असज्जाय तो नहीं है, अर्थात् यह समय स्वाध्याय के लिए उपयुक्त है या नहीं - इसी को **काल प्रतिलेखन** कहते हैं। इससे **श्री उत्तराध्ययन सूत्र** में बताए अनुसार ज्ञानावरणीय कर्म की निर्जरा होती है।

प्र-3 : स्वाध्याय क्या है? उससे क्या लाभ होता है?

उ- 3 : (1) श्रेष्ठ पठन-पाठन रूप अध्ययन (2) स्व आत्मा के गुणों के स्वरूप का चिंतन (3) यह सोचना कि मेरा जीवन ऊँचा बन रहा है या नहीं। स्वाध्याय से हित, अहित, कर्तव्य, अकर्तव्य, धर्म, अधर्म, पुण्य, पाप को जाना जा सकता है।

प्र-4 : साधक को स्वाध्याय कितनी बार करना चाहिए?

उ- 4 : रात्रि के पहले और चौथे प्रहर तथा दिन के पहले और चौथे प्रहर- इस प्रकार चार प्रहर स्वाध्याय करना चाहिए। अन्य असज्जाय टालकर **कालिक सूत्रों** का स्वाध्याय इन चार प्रहरों में और **उत्कालिक सूत्रों** का स्वाध्याय तो आठों प्रहर चार संधीकालों को छोड़कर किया जा सकता है।

प्र-5 : स्वाध्याय के कितने प्रकार हैं? कौन-कौन से?

उ- 5 : स्वाध्याय के पाँच भेद हैं: **(1) वाचना:** शास्त्रो के सूत्र और अर्थ को ग्रहण करना। **(2) पृच्छणा:** संदेह होने पर प्रश्न करना। **(3) परियट्टणा:** सूत्र और अर्थ का पुनरावर्तन करे जिससे वे विस्मृत न हो जावे। **(4) अनुप्रेक्षा:** सूत्रों के तत्त्वों का, अर्थ का चिंतन करे। **(5) धर्मकथा:** सूत्रों का रहस्य जानकर बादमें उसका उपदेश दे, वह धर्मकथा।

प्र-6 : साधक को प्रतिलेखन कितनी बार करना होता है?

उ- 6 : दिन के प्रथम और चतुर्थ प्रहर, यानी दो बार करना होता है।

प्र-7 : प्रतिलेखन और प्रमार्जन किन वस्तुओं का किया जाता है?

उ- 7 : प्रतिलेखन - देखना और प्रमार्जन - पोंजना। साधक के पास जो मुहपत्ति, गुच्छा, रजोहरण, वस्त्र आदि हों, उनका **प्रतिलेखन** करना होता है। पात्र, पाट, पाटला, बाजोट जैसी कठोर वस्तुओं का **प्रतिलेखन** और गुच्छे द्वारा **प्रमार्जन** करना होता है। वस्त्र दिन और रात्रि दोनों समय उपयोग में आते हैं, इसलिए प्रत्येक दिन में दो बार उनका प्रतिलेखन करना होता है। प्रतिलेखन करते समय उत्कृष्ट वंदना के आसन में बैठना चाहिए।

प्र-8 : तृतीय श्रमणसूत्र का पाठ कब बोलना चाहिए?

उ- 8 : प्रतिक्रमण में प्रातः और संध्या के समय इस पाठ को बोलना चाहिए। साथ ही प्रतिलेखन के बाद इसका कायोत्सर्ग भी करना चाहिए।

प्र-9 : दुष्प्रतिलेखन और दुष्प्रमार्जन का क्या अर्थ है?

उ- 9 : आलस्यपूर्वक, जल्दबाज़ी से या विधिविहीन देखना-दुष्प्रतिलेखन कहलाता है। जल्दबाज़ी में, बिना विधि के, बिना उपयोग के पोंजना- दुष्प्रमार्जन कहलाता है।

प्र-10: यह पाठ बोलना आवश्यक क्यों है?

उ- 10: यदि स्वाध्याय या प्रतिलेखन नहीं किया गया हो, या तो निषेद्ध समय में किया गया हो, उस पर श्रद्धा नहीं रखी गई हो, इस संबंध में मिथ्या प्ररूपणा की गई हो, योग्य विधिपूर्वक नहीं किया गया हो, इत्यादि जो भी अतिचार दोष लगे हों, उनसे मुक्त होने के लिए यह पाठ बोलना आवश्यक है।

प्र-11: यदि स्वाध्याय और प्रतिलेखन में अतिक्रम आदि चार दोष लगे हों तो क्या उसका प्रतिक्रमण हो सकता है?

उ- 11: स्वाध्याय और प्रतिलेखन उत्तर गुण हैं। इन में अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार- चारों दोष लगने से चारित्र में मलिनता आती है, परंतु पूर्ण चारित्र भंग नहीं होता, इसलिए उसका प्रतिक्रमण हो सकता है।

अपेक्षित प्रश्न:

(1) तृतीय श्रमणसूत्र का नाम क्या है?

(2) अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार का क्या अर्थ है?

2. तत्त्व विभाग / संस्कार विभाग

1. आगारधर्म का स्वरूप और उसकी दुर्लभता

अनंतकाल के परिभ्रमण में, हमने भूतकाल में पंचेन्द्रिय जीव के स्वरूपमें सबसे कम समय व्यतीत किया है। उसमें भी नरक और देवगति में अधिक समय व्यतीत किया है। तिर्यंच पंचेन्द्रिय रूप में भी बहुत समय निकल गया। इस प्रकार पंचेन्द्रिय जीव होते हुए भी मनुष्य के भव बहुत ही कम मिले है। उसमें भी जैन कुल, आर्यक्षेत्र, पूज्य साधु-साध्वीजी का संग, जिनवाणी, सम्यक् दर्शन, श्रावकपना और साधुपना प्राप्त होना अत्यंत दुर्लभ है।

चारों गतियों के संसारी जीवों का औसत निकालें तो **अनंत मिथ्यात्वी जीवों में से केवल एक जीव समकिती होता है और असंख्य समकिती जीवों में से भी औसतन एक जीव श्रावक बनता है।** इसलिए श्रावक धर्म की दुर्लभता को समझकर आराधक **श्रावक बनने हेतु सम्यक् पराक्रम (पुरुषार्थ)** करने हेतु उसके स्वरूप को समझते है।

(1) वस्तु के स्वभाव को धर्म कहा जाता है। ज्ञान और दर्शन आत्मा के गुण हैं। आत्मा का मूल स्वरूप समता रूप है, अतः समता रूप आत्मा का धर्म है। (2) जैन धर्म में साधक के लिए अरिहंत भगवान की आज्ञा का पालन करना ही धर्म है। अरिहंत भगवान जो करने को कहें - वह करना धर्म है। जो छोड़ने को कहें - वह छोड़ना धर्म है। (3) धर्म के दो मुख्य भेद हैं: श्रुत धर्म और चारित्र धर्म। (4) चारित्र धर्म के भी दो भेद हैं: आगार धर्म यानी श्रावक धर्म और अणगार धर्म यानी साधु धर्म। (5) श्रावक मन, वचन और काया से साधु-साध्वीजी की पर्युपासना करता है, इसलिए उसे श्रमणोपासक कहा जाता है। (6) 'श्रावक' शब्द का विश्लेषण: **श्र** = जिसमें श्रद्धा हो, **व** = जिसमें विवेक हो और **क** = जो क्रिया करके कर्म का क्षय करता हो। (7) श्रावक श्रद्धावान होता है इसलिए सम्यक् दर्शन की आराधना करता है। श्रावक विवेकी होता है इसलिए सम्यक् ज्ञान की आराधना करता है। श्रावक क्रियावान होता है इसलिए सम्यक् चारित्र की आराधना करता है। (8) ज्ञान से पदार्थ को जानना, दर्शन से उस पर श्रद्धा करना, चारित्र से आचरण करना और तप से पूर्वमें बंधे कर्मों का नाश करना। (9) इसीलिए श्रावक अपनी यथाशक्ति व्रत-

नियम को धारण करता है। श्रावक धर्म सोना खरीदने जैसा है, साधु धर्म हीरा खरीदने जैसा है। इस प्रकार दोनों ही धर्म यथार्थ मोक्षमार्ग हैं।

आओ, प्रश्नोत्तर द्वारा श्रावक धर्म की अन्य जानकारी प्राप्त करें:

प्र. श्रावक कौन बन सकता है?	उ. मनुष्य और तिर्यंच पंचेन्द्रिय।
प्र. श्रावक धर्म के अन्य नाम?	उ.देशविरती चारित्र धर्म अथवा संयम।
प्र. चतुर्विध संघ में श्रावक का स्थान?	उ. तीसरा।
प्र. श्राविका का स्थान?	उ. चौथा।
प्र. किस प्रकार के मनुष्य श्रावक?	उ. 15 कर्मभूमि (ढाई द्वीप) के गर्भज मनुष्य।
प्र. किस प्रकार के तिर्यंच श्रावक?	उ. ढाईद्वीप अंदर के और ढाईद्वीप बाहर के तिर्यंच पंचेन्द्रिय श्रावक।
प्र. ढाईद्वीप में श्रावक किस काल में?	उ. अवसर्पिणी काल के 3, 4, 5 आरे में। उत्सर्पिणी काल के 3, 4 आरे में।
प्र. महाविदेह क्षेत्र में किस काल में?	उ. सदा होते है, शाश्वत।
प्र. मनुष्य श्रावक कितने?	उ. संख्याता
प्र. तिर्यंच श्रावक कितने?	उ. असंख्याता
प्र. श्रावक के व्रत कितने?	उ. 12
प्र. श्रावक के मनोरथ कितने?	उ. 3
प्र. श्रावक का गुणस्थान कौन सा?	उ. पाँचवा।
प्र. श्रावक के अभिगम कितने?	उ. 5
प्र. श्रावक के गुण कितने?	उ. 21
प्र. श्रावक को इंद्रियाँ कितनी?	उ. 5
प्र. श्रावक का आयुष्य कितना?	उ. मनुष्य जघन्य 9 वर्ष, तिर्यंच श्रावक का जघन्य अंतर्मुहूर्त। दोनों का उत्कृष्ट पूर्व क्रोड वर्ष का।
प्र. एक करोड़ पूर्व वर्ष यानि कितने?	उ. 84 लाख वर्ष × 84 लाख वर्ष यानि 70,560 अबज वर्ष × 1 करोड वर्ष।
प्र. श्रावक की अवगाहना कितनी?	उ. मनुष्य जघन्य दो हाथ, उत्कृष्ट 500 धनुष. तिर्यंच जघन्य आंगुल का असंख्यातवा

भाग, उत्कृष्ट हजार योजन।

प्र. श्रावक में जीव के भेद कितने? उ. 15 कर्मभूमि मनुष्य + 5 संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय -कुल 20 के पर्याप्त।

प्र. श्रावक मरकर कहाँ जाते हैं? उ. देवलोक में (जघन्य 1ला, उत्कृष्ट 12वा देवलोक)।

प्र. श्रावकधर्म परलोक में आता है? उ. नहीं, साथ में नहीं आता।

श्रावकधर्म की आराधना कहाँ तक हो सकती है? उ. जावजीव (यावत् जीवन) तक और वह परभव में साथ आती है।

श्रावक धर्म का स्वरूप और उसकी गरिमा:

जब तीर्थ की स्थापना होती है, तब पहले ही दिन गणधर द्वादशांग (12 अंग सूत्रों) की रचना करते हैं। वह रचना शाश्वत (सनातन) होती है। तीर्थ स्थापना के पहले ही दिन 12 अंग सूत्रों का ग्रंथ संयोजन हो जाता है। पहले ही दिन सातवे अंग सूत्र श्री उपासक दशांग सूत्र की रचना हो गई। आगमों में गणधर तीर्थंकरों द्वारा कहे गए श्रावकों के जीवन को गूंथते हैं। क्योंकि वर्तमान तीर्थंकरों के शासन में अभी श्रावक बनने हैं, इसलिए वे पूर्व तीर्थंकरों के शासन में हुए श्रावकों की जानकारी को ग्रंथित करते हैं। तीर्थंकरों के हृदय में "श्रावक...", गणधरों के हृदय में "श्रावक...", जैन शासन में "श्रावक..."।

श्रावकको के लिए एक अलग विशेष आगमका संयोजन किया गया है - यही बात श्रावकत्व की महिमा को दर्शाती है।

श्रावक के 12 व्रतों को धारण करने की पुस्तीकामें से यथाशक्ति व्रत-नियम धारण (ग्रहण) करें।

श्रावक धर्म की सुवर्ण शिक्षा

दर्पण शरीर का दर्शन करवाता है और आगम रूपी दर्पण आत्मा का दर्शन करवाता है । आप आगम रूपी दर्पण में झाँकोगे, तो आत्मस्वरूप को देखेंगे, आत्मकल्याण का मार्ग पाओगे, आत्मा को परमात्मा बनाओगे। तो आओ, आगम के पन्नों पर झलकते श्रावक धर्म की आराधना करनेवाले श्रमणोपासकों के जीवन को देखें और उनसे प्रेरणा लेकर अपनी आराधना को वैसी बनाने का प्रयास करें।

श्री उपासक दशांग सूत्र

वाह! भगवान महावीर स्वामी ने स्वयं **कामदेव श्रावक** की दृढ़ता की प्रशंसा की! "हे आर्यो! जो गृहस्थ अवस्था में रहकर श्रावक धर्म का पालन करता है, वह श्रावक भी देव, मनुष्य और तिर्यंच के उपसर्गों को सहन करता है और धर्म में अडिग रहता है - तो द्वादशांग के ज्ञाता साधु-साध्वियों को तो और अधिक उपसर्ग सहने ही चाहिए।" दृढ़ धर्म पालन के लाभ क्या कुछ साधारण हैं?

भगवान ने स्वयं कहा- "निर्ग्रंथ प्रवचन में सत्य, तथ्य और वास्तविक भावों का प्रायश्चित नहीं होता। इसलिए गौतम! तुम प्रायश्चित लो।" यह कहकर भगवान ने **गौतम स्वामी** को आनंद श्रावक के पास क्षमा मांगने भेजा। आनंद श्रावक को जो अवधिज्ञान हुआ था, उसका भगवान ने समर्थन किया।

यदि साधु में क्षमा के मूल्य हैं, तो श्रावक में तो और भी अधिक होने चाहिए...!

श्री भगवती सूत्र

श्रावक के मुख से प्रभु का नाम आना सामान्य है, लेकिन प्रभु के मुख से श्रावक का नाम आना असामान्य है। भगवान अपने मुख से गौतम गणधर आदि से कहते हैं: "हे गौतम! उस कालमें उस समय **'तुंगिया' नामक नगरी** थी। वहाँ बहुत से **श्रावक** रहते थे, जो नौ तत्त्व के ज्ञाता, पुण्य-पाप के स्वरूप के जानकार और देवों की सहायता की इच्छा न करनेवाले थे। धर्म उनके हाड़-मज्जा में समाया हुआ था।" भगवान के हृदय और मुख में जो श्रावक बसे - वे तो संसारसागर को पार कर ही गये।

प्रभु का बोध: भगवान ने पोखली आदि श्रावकों को कहा - "तुम शंख श्रावक की निंदा मत करो। वह धर्म को लेकर प्रीति व दृढ़ता से युक्त है।"

शंख श्रावक, धन्य हो! तुम्हारा मनुष्य जीवन सफल हुआ...!

भगवान ने मंडूक श्रावक से कहा "हे मंडूक! तुमने अन्य तीर्थिओं को सही उत्तर दिया, सटीक उत्तर दिया। अरिहंतो की और अरिहंत प्ररूपित धर्म की अशातना करते हुए, अन्य धर्मियों को तुमने निरुत्तर किया।" वाह! ज्ञान और बुद्धि से अन्य तीर्थियों को हराने वह दृढ़धर्मी श्रावक -एकावतारी बन ही जाता है...!

श्री सुख विपाक सूत्र

प्रभु ! आप ने स्वमुख से 'सुबाहु कुमार' को श्रावक के बारह व्रत अंगीकार करवाये! सुबाहु कुमार ने भगवान से पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत रूपी गृहस्थ धर्म स्वीकार किया। कहो, उन बारह व्रतों का मूल्य कितना होगा?

श्री वह्नि दशा सूत्र

भगवान अरिष्टनेमि ने बलभद्र राजा के पुत्र **निषिध कुमार आदि बारह राजकुमारों** को पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत अंगीकार करवाए।

श्री ऊत्तराध्ययन सूत्र

श्री उत्तराध्ययन सूत्र रूपी अंतिम देशना में भी प्रभु ने कहा: "श्रावक सामायिक आदि की आराधना करते-करते पक्खी की रात को पौषध व्रत करें।"
देह को नहीं - आत्मा को पोषण देने की बात प्रभु ही करते हैं...!!

श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र

साधु के पाँच महाव्रत और श्रावक के पाँच अणुव्रत - दोनों में आनेवाले अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के गुणों की महीमा करने में प्रभुने क्या बाकी रखा ?

फिर बात केवल इतनी ही...

निष्कर्ष: सर्वज्ञ, सर्वदर्शी श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने श्रावक धर्म को चारित्र धर्म का एक भेद बताया है। प्रभु ने स्वमुख से अनेक भव्य आत्माओं को श्रावक के बारह व्रत अंगीकार कराये हैं। श्रावक कों के सम्यक्त्व के, सम्यग्ज्ञान के, प्रिय धर्मता के, दृढ़ धर्मता के, उपसर्गों में अडिगता के, पड़िमा धारण करने के, अन्य तीर्थियों को निरुत्तर करने संबंधी निरतिचार आराधना के गुणगान किए हैं - जो आज भी भव्य आत्माओं को प्रेरणा प्रदान कर रहे हैं।

2. अथ श्री नव तत्त्व

विवेकी सम्यग्दृष्टि जीवों को नव तत्त्वों को जैसे हैं, वैसे तथारूप बुद्धि के अनुसार गुरुगम्य ज्ञान से स्वीकारना चाहिए। तत्त्व का अर्थ है वस्तु का सच्चा स्वरूप और जिसका शाश्वत अस्तित्व होता है। नौ तत्त्वों के नाम इस प्रकार हैं। **(1) जीव तत्त्व (2) अजीव तत्त्व (3) पुण्य तत्त्व (4) पाप तत्त्व (5) आश्रव तत्त्व (6) संवर तत्त्व (7) निर्जरा तत्त्व (8) बंध तत्त्व (9) मोक्ष तत्त्व।**

1. जीव तत्त्व

चैतन्य लक्षण, सदा सउपयोगी, असंख्यात प्रदेशी, सुख-दुख को जानने वाला, सुख-दुख का वेदक (अनुभवकर्ता), और अरूपी होता है - उसे जीव कहते हैं। **या फिर** व्यवहार नय से देखा जाए तो - जो शुभ-अशुभ कर्मों का कर्ता, हर्ता और भोक्ता है; और निश्चय नय से देखें तो - जो ज्ञान, दर्शन और चारित्ररूप निजगुणों का ही भोक्ता है, उसे जीव कहते हैं। जीव के स्वरूप को **जीव तत्त्व** कहा जाता है।

जीव के विविध प्रकारों के भेद

जीव के भेद	संसारी जीव अपेक्षा	संसारी और सिद्ध सर्व जीव अपेक्षा
1	चैतन्य[1] लक्षण जीव	चैतन्य लक्षण जीव
2	त्रस[2] और स्थावर[3]	संसारी और सिद्ध
3	स्त्रीवेद[4], पुरुषवेद, नपुंसकवेद	भव सिद्धियाँ[5], अभव सिद्धियाँ[6] नोभव सिद्धियाँ नो अभव सिद्धियाँ[7]

[1] जैसे गुड़ का गुण मिठास होता है, वैसे ही जीव का गुण है चैतन्य। जैसे गुड़ और मिठास अलग नहीं होते, वैसे ही जीव और **चैतन्य** अलग नहीं होते। चैतन्य ही ज्ञान गुण है।" [2] **त्रस** - वे जीव जो स्वयं चल-फिर सकते हैं। जो त्रास से बचने धूप से छाँव में और छाँव से धूप में चले जाए, वह त्रस। [3] **स्थावर** - वे जीव जो स्वयं हलन -चलन नहीं कर सकते। [4] **वेद** - विषय और विकार की उत्पत्ति को वेद कहते हैं। [5] **भव सिद्धियाँ** - वे भव्य जीव जो मोक्ष प्राप्ति के योग्य हैं। [6] **अभव सिद्धियाँ**- वे अभव्य जीव जो मोक्ष के अयोग्य हैं। [7] **नोभवसिद्धियाँ-नोअभवसिद्धियाँ** - सिद्ध भगवान।

4	नारकी, तिर्यंच, मनुष्य, देव	चक्षुदर्शनी,अचक्षुदर्शी, अवधिदर्शी, केवलदर्शी
5	एकेंद्रिय, दोइंद्रिय, तेइंद्रिय, चौरेंद्रिय, पंचेंद्रिय	सजोगी, मनजोगी, वचनजोगी, कायजोगी, अजोगी
6	पृथ्वीकाय,अप्काय,तेउकाय, वायुकाय , वनस्पतीकाय, तरस्काय	सकषायी,क्रोधकषायी,मानकषायी, मायाकषायी,लोभकषायी,अकषायी
7	नारकी, तिर्यंच, तिर्यंचाणी, मनुष्य, मनुष्याणी, देव, देवी	
8		सलेशी[8] , कृष्णलेशी, नीललेशी, कापोतलेशी , तेजोलेशी, पद्मलेशी, शुक्ललेशी, अलेशी
9	1 पृथ्वीकाय, 2 अप्काय, 3 तेउकाय, 4 वायुकाय, 5 वनस्पतिकाय, 6 दोइंद्रिय, 7 तेइंद्रिय, 8 चौरेंद्रिय, 9 पंचेंद्रिय	
10	एकेंद्रिय से पंचेंद्रिय के अपर्याप्ता[9] पाँच और पर्याप्ता पाँच मिलाकर दस	
11	एकेंद्रिय, दोइंद्रिय, तेइंद्रिय, चौरेंद्रिय, नारकी, तिर्यंच, मनुष्य, भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी, वैमानिक	
12	6 काय के अपर्याप्ता और पर्याप्ता:12	
13		6 लेश्या के अपर्याप्ता, पर्याप्ता 12 तथा अलेशी 1 = 13

[8] **लेश्या -** कषाय एवं योग की प्रवृत्ति से उत्पन्न आत्मा के शुभ-अशुभ परिणामों को लेश्या कहते हैं। जिसके द्वारा आत्मा कर्मों से लिप्त होती है, वह लेश्या कहलाती है। [9] **अपर्याप्ता -** वह अवस्था, जिसमें जीव जितनी पर्याप्तियाँ बाँधने वाला है, उन्हें पूर्ण रूप से नहीं बाँध, लेता तब तक उसे अपर्याप्त कहते हैं। [10] **पर्याप्ता -** वह अवस्था, जिसमें जीव जितनी पर्याप्तियाँ बाँधने वाला है, उन्हें पूर्ण रूप से बाँध लेता है, उसे पर्याप्त कहते हैं।

संसारी जीवों के 14 भेद : (1) *सुक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त (2) सुक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त (3) बादर एकेंद्रिय अपर्याप्त (4) बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त (5) दोइंद्रिय अपर्याप्त (6) दोइंद्रिय पर्याप्त (7) तेइंद्रिय अपर्याप्त (8) तेइन्द्रिय पर्याप्त (9) चौरेन्द्रिय अपर्याप्त (10) चौरेन्द्रिय पर्याप्त (11) +असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त (12) ^असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त (13) संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त (14) संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त

व्यवहार विस्तार नय से कुल 563 प्रकार के जीव माने गए हैं - नारकी: 14 + तिर्यंच: 48 + मनुष्य: 303 + देव: 198 कुल = 563 भेद।

नारकी के 14 भेद

नरक - जहाँ शुभ फल देने वाले पुण्यकर्म विद्यमान नहीं होते, वह नरक कहलाता है। जहाँ जीव रोता है, चिल्लाता है, जहाँ परमाधामी देव उसे कष्ट देते हैं, वह नरक है। जिस स्थान से सुखरूपी अर्क समाप्त हो गया है और जहाँ केवल दुःख ही दुःख है, वह नरक है।

सात नरकों के नाम: (1) धमा (2) वंशा (3) शिला (4) अंजना (5) रिट्ठा (6) मघा (7) माघवती

उसके गोत्र : (1) रत्नप्रभा (2) शर्कराप्रभा (3) वालुप्रभा (4) पंकप्रभा (5) धूम्रप्रभा (6) तमसप्रभा (7) तमस्तमःप्रभा। इन सात नरकों के अपर्याप्ता 7, पर्याप्ता 7 कुल 14 भेद नारकी के कहे गए हैं।

इन के अर्थ इस प्रकार हैं : (1) रत्नप्रभा - जिसमें 16 जातियों के रत्नों की अधिकता वाली पृथ्वी होती है। (2) शर्कराप्रभा - जिसमें तीतिक्षण व्र, टेढ़े-मेढ़े कंकड़-पत्थर होते हैं। (3) वालुप्रभा - जिसमें रेत (वालु) होती है। (4) पंकप्रभा - जिसमें रक्त और माँस के कीचड़ जैसे पुद्गल होते हैं। (5) धूम्रप्रभा - जिसमें धुआँ होता है। (6) तमस्प्रभा - जिसमें अंधकार होता है। (7) तमस्तमः प्रभा - जिसमें घोर अंधकार होता है।

---

*__सूक्ष्म एकेन्द्रिय -__ इसमें सूक्ष्म पृथ्वीकाय, सूक्ष्म अपकाय, सूक्ष्म तेउकाय, सूक्ष्म वायुकाय, और सूक्ष्म वनस्पतिकाय आते हैं। बादर एकेन्द्रिय - इसी प्रकार समझना चाहिए। निगोद - निगोद में सूक्ष्म वनस्पति और साधारण वनस्पति के अपर्याप्त और पर्याप्त - ये चार भेद आते हैं। +**असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त -** इसमें असंज्ञी नारकी, संमूर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय, संमूर्च्छिम मनुष्य और असंज्ञी देव आते हैं। ^**असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त -** इसमें संमूर्च्छिम जलचर, स्थलचर, उरपर, भुजपर और खेचर- ये पाँच तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीव आते हैं।

प्रथम नरक का पिंड 1,80,000 योजन का है। उस में से ऊपर 1,000 योजन और नीचे 1,000 योजन के दलों को छोड़कर बीच में 1,78,000 योजन का पोलापन होता है। इस में होते हैं **-13** पाथड़ा **12** आंतरा। ऊपर के दो आंतरे छोड़कर, नीचे के **10 आंतरे में 10 असुरकुमार** आदि भवनपति देव निवास करते हैं। 13 पाथड़ों में कुल **30 लाख नरकावास** हैं। सातों नरकों के प्रत्येक पाथडे। **3,000 योजन** के है, जिसमें नारकी जीव रहते हैं। नारकी जीवों के जन्म के लिए असंख्यात कुम्भियाँ हैं। असंख्यात नारकी हैं। प्रथम नरक के तेरहवें पाथड़े के नीचे चार बोल होते हैं । (1) 20,000 योजन का **घनोदधि** - (बर्फ के समान घन जल) (2) असंख्यात योजन का **घनवात** - (घना भारी वायु - जैसे रसोईघर के गैस सिलेंडर की गैस) (3) असंख्यात योजन का **तनवात** - (हल्का वायु -जैसे गुब्बारे में भरी हवा) (4) असंख्यात योजन का आकाश- (घनवात व तनवात से भिन्न प्रकार की वायु, परंतु यह आकाशास्तिकाय द्रव्य नहीं है)

परिभाषाएँ : पाथड़ा: अर्थात् "प्रतर" भवन के माले में बने फर्श या स्लैब के समान अलग भाग करनेवाला स्तर।

आंतरा: दो पाथड़ों के बीच का भाग, जो पाथड़े से भिन्न प्रकार की पृथ्वी से बना होता है। आंतरा कोई पोलापन नहीं होता।

प्रथम नरक के नीचे क्रम से दूसरी से लेकर सातवीं नरक होती हैं। सभी नरकों के नीचे प्रथम नरक में बताए गए चार बोल होते हैं। इन नरकों के आंतरे खाली होते हैं। सातवीं नरक में ऊपर और नीचे 52,500 योजन दलों को रखें, तो बीच में 3,000 योजन का पोलापन होता है।

सातवीं नरक के नीचे असंख्यात योजन तक आकाश लोक के अंत तक है, और फिर उसके नीचे अनंत अलोक आरंभ होता है। अन्य माहिती नीचे दी गई है।

सात नरक का विवरण - कोष्टक

नर्क	पिंड(योजन)	पोलान(योजन)	पाथडा	आंतरा	नरकवास
1	1,80,000	1,78,000	13	12	30 लाख
2	1,32,000	1,30,000	11	10	25लाख
3	1,28,000	1,26,000	9	8	15 लाख
4	1,20,000	1,18,000	7	6	10 लाख
5	1,18,000	1,16,000	5	4	3 लाख
6	1,16,000	1,14,000	3	2	99,995
7	1,08,000	3,000	1	0	5
				कुल नरकवास:	**84 लाख**

तिर्यंच के 48 भेद

जो तिर्च्छे (आड़े) रूप से चलता है और जिसकी वृद्धि तिर्च्छे रूप में होती है, उसे तिर्यंच कहते हैं।

एकेन्द्रिय (स्थावर) तिर्यंच के 22 भेद:

(1) सुक्ष्म पृथ्वीकाय के अपर्याप्त और पर्याप्त, बादर पृथ्वीकाय के अपर्याप्त, पर्याप्त। 4
(2) सुक्ष्म अप्काय के अपर्याप्त और पर्याप्त, बादर अप्काय के अपर्याप्त, पर्याप्त। +4
(3) सुक्ष्म तेउकाय के अपर्याप्त और पर्याप्त, बादर तेउकाय के अपर्याप्त, पर्याप्त। +4
(4) सुक्ष्म वायुकाय के अपर्याप्त और पर्याप्त, बादर वायुकाय के अपर्याप्त, पर्याप्त। +4
(5) वनस्पतिकाय के सुक्ष्म, प्रत्येक और साधारण, इन तीनों के अपर्याप्त, पर्याप्त। +6

विकलेन्द्रिय के 6 भेद:

(1) दोइन्द्रिय: अपर्याप्त और पर्याप्त (2) तेइन्द्रिय: अपर्याप्त और पर्याप्त
(3) चौरेन्द्रिय: अपर्याप्त और पर्याप्त 6

तिर्यंच पंचेन्द्रिय के 20 भेद :

(1) गर्भज जलचर के अपर्याप्त, पर्याप्त - संमूर्च्छिम जलचर के अपर्याप्त, पर्याप्त 4
(2) गर्भज स्थलचर के अपर्याप्त, पर्याप्त - संमूर्च्छिम स्थलचर के अपर्याप्त, पर्याप्त +4
(3) गर्भज उरपर के अपर्याप्त, पर्याप्त - संमूर्च्छिम उरपर के अपर्याप्त, पर्याप्त +4
(4) गर्भज भुजपर के अपर्याप्त, पर्याप्त - संमूर्च्छिम भुजपर के अपर्याप्त, पर्याप्त +4
(5) गर्भज खेचर के अपर्याप्त, पर्याप्त - संमूर्च्छिम खेचर के अपर्याप्त, पर्याप्त +6

तिर्यंच के कुल भेद - 22 + 6 + 20 = 48

मनुष्य के 303 भेद

जो मनन (चिंतन) कर सकता है, वह मनुष्य है।

15 कर्मभूमि के मनुष्य, 30 अकर्मभूमि के मनुष्य, 56 अंतरद्वीप के मनुष्य = 101, इन क्षेत्रों के गर्भज मनुष्य अपर्याप्त 101+ गर्भज मनुष्य पर्याप्त 101= 202 तथा +101 क्षेत्रों के संमूर्च्छिम मनुष्य अपर्याप्त = 303 भेद

कर्मभूमि क्या है? (1) असि: शस्त्र चलाना, (2) मसि: लेखन करना, व्यापार करना, (3) कृषि: खेती करना। इन तीन प्रकार के व्यवसाय करके जीवन निर्वाह करने वाले क्षेत्र को कर्मभूमि कहते हैं। जीस भूमि पर मोक्षमार्ग को जानने वाले और उसका उपदेश देने वाले तीर्थंकर आदि उत्पन्न हो सकते हैं, उसे कर्मभूमि कहते हैं।

कर्मभूमि के क्षेत्र कितने और कहाँ हैं? 5 भरत, 5 ऐरावत, 5 महाविदेह ये15 कर्मभूमि क्षेत्र मध्यलोक में एक लाख योजन का जंबूद्वीप स्थित है - (जो थाली के आकार में गोल होता है, बाकी के असंख्य द्वीप समुद्र कंगन जैसे गोल है।) इस जंबूद्वीप में 3 कर्मभूमि क्षेत्र हैं - 1 भरत, 1 ऐरावत, 1 महाविदेह।

इसको घेरे हुए 2 लाख योजन का लवण समुद्र है। इसके बाद 4 लाख योजन का धातकीखंड द्वीप है, जिसमें 2 भरत, 2 ऐरावत और 2 महाविदेह = 6 क्षेत्र हैं।

इसको घेरे हुए 8 लाख योजन का कालोदधि समुद्र है। इसको घेरके 8 लाख योजन का अर्धपुष्कर द्वीप है, उसमें 2 भरत, 2 ऐरावत और 2 महाविदेह = 6 क्षेत्र हैं।

अतः जंबूद्वीप में 3 क्षेत्र +घातकीखंड में 6 क्षेत्र + अर्धपुष्कर द्वीप में 6 क्षेत्र कुल 15 कर्मभूमि क्षेत्र

अकर्मभूमि क्या है? जहाँ तीनों कर्म (शस्त्र, लेखन, खेती) नहीं होते, जहाँ जीव दस प्रकार के कल्पवृक्षों के माध्यम से जीवन जीते है - वह अकर्मभूमि कहलाती है।

अकर्मभूमि के 30 क्षेत्र हैं: ५ हेमवय, 5 हिरण्यवय, 5 हरिवास, 5 रम्यक्वास, 5 देवकुरु, 5 उत्तर = 30 अकर्मभूमि क्षेत्र।

इन में से 6 क्षेत्र जंबूद्वीप में हैं, 1 हेमवय, 1 हिरण्यवय, 1 हरिवास, 1 रम्यक्वास, 1 देवकुरु, 1 उत्तर

2 क्षेत्र धातकीखंड द्वीप में हैं, २ हेमवय, 2 हिरण्यवय, 2 हरिवास, 2 रम्यक्वास, 2 देवकुरु, 2 उत्तर, १2 क्षेत्र अर्धपुष्कर द्वीप में हैं।

२ हेमवय, 2 हिरण्यवय, 2 हरिवास, 2 रम्यक्वास, 2 देवकुरु, 2 उत्तर-कुरु सब मिल 30 अकर्मभूमि के मनुष्य क्षेत्र है।

अंतरद्वीप के मनुष्यों के 56 भेद

अंतरद्वीप के मनुष्य याने क्या? चारों ओर समुद्र होता है और बीच में भूमि हो, वह द्वीप कहलाता है। जब एक द्वीप के बाद दूसरा द्वीप हो, तो वह अंतरद्वीप कहलाता है। ये मनुष्य लवणसमुद्र के मध्य में स्थित होते हैं, या दो द्वीपों के बीच अंतर होता हैं, इसलिए इन्हें अंतरद्वीप के मनुष्य कहा जाता है। अकर्मभूमि और अंतरद्वीपों में रहने वाले सभी मनुष्य जुगलिया (जोड़े में उत्पन्न) होते हैं।

जंबूद्वीप में भरत क्षेत्र की सीमा पर एक पर्वत है **चूलहिमवंत** नामक, जो सोने जैसा पीला दिखाई देता है। इस पर्वत के पूर्व और पश्चिम दोनों किनारों पर, लवणसमुद्र में अंतर-अंतर पर 7 द्वीप स्थित हैं। सातवें अंतरद्वीप का किनारा चूलहिमवंत पर्वत के किनारे से 8,400 योजन दूर स्थित है। इस प्रकार, इस पर्वत के चारों दिशाओं में 7-7 अंतरद्वीप हैं। कुल 28 द्वीप है। ये सभी द्वीप स्वतंत्र हैं, आपस में जुड़े हुए नहीं हैं। सभी अंतरद्वीप थाली के आकार में गोलाकार होते हैं।

ये अंतरद्वीप कहाँ स्थित हैं?

जगती की कोट (किनारे) से जब हम लवणसमुद्र में 300 योजन भीतर जाते हैं, तब पहला अंतरद्वीप आता है -जो 300 योजन लंबा और चौड़ा, गोलाकार होता है।

पहले अंतरद्वीप से 400 योजन दूर दूसरा अंतरद्वीप आता है, जो 400 योजन लंबा और चौड़ा होता है। दूसरे अंतरद्वीप से 500 योजन दूर तीसरा अंतरद्वीप, तीसरे अंतरद्वीप से 600 योजन दूर चौथा अंतरद्वीप, चौथे अंतरद्वीप से 700 योजन दूर पाँचवाँ अंतरद्वीप, पाँचवे अंतरद्वीप से 800 योजन दूर छट्ठा अंतरद्वीप, छट्ठे अंतरद्वीप से 900 योजन दूर सातवाँ अंतरद्वीप आता है, जो 900 योजन लंबा और चौडा है। इस प्रकार, दोनों ओर 7-7 अंतरद्वीप, चारों ओर के कुल 28 अंतरद्वीप है। एक अंतरद्वीप से दुसरा अंतरद्वीप जीतने योजन दूर है, उनके लंबाई - चौड़ाई का माप भी वही है।

इसी प्रकार, ईरवत क्षेत्र की सीमा पर शिखरी पर्वत है, जो चूलहिमवंत के समान ही है। वहाँ भी उपरोक्त वर्णन के अनुसार 28 अंतरद्वीप हैं। अतः कुल 28 + 28 = 56 अंतरद्वीप है।

संमूर्च्छिम मनुष्यों की उत्पत्ति के स्थान : 101 क्षेत्रों में जो संमूर्च्छिम मनुष्य होते हैं वे 101 गर्भज मनुष्यों की अशुचि के 14 स्थानों में उत्पन्न होते है।(ये

14 स्थान प्रतिक्रमण के पाठ में दिए गए संमूर्च्छिम मनुष्यों की उत्पत्ति स्थानों के अनुसार हैं।)

कर्मभूमि के 15 और अकर्मभूमि के 30 क्षेत्रों का कोष्ठक

क्षेत्र का नाम	भरत	इरवत	महा विदेह	कुल कर्म भूमि	हेम वय	हिर ण्यवय	हरि वास	रम्य क्वास	देव कुरु	उत्तर कुरु	कुल अकर्म भूमि
जंबूद्वीप मे	1	1	1	3	1	1	1	1	1	1	6
घातकीखंड में	2	2	2	6	2	2	2	2	2	2	12
अर्धपुष्कर में	2	2	2	6	2	2	2	2	2	2	12
कुल क्षेत्र	5	5	5	15	5	5	5	5	5	5	30

मनुष्यों के 303 भेदों की समझ का कोष्ठक

भेद क्षेत्र का नाम	भरत भेद	इरवत भेद	महा विदेह भेद	कुल कर्म भेद	हेम वय भेद	हिर ण्यवय भेद	हरि वास भेद	रम्य क्वास भेद	देव कुरु भेद	उत्तर कुरु भेद	कुल अकर्म भेद
जंबूद्वीप मे	3	3	3	9	3	3	3	3	3	3	18
घातकीखंड में	6	6	6	18	6	6	6	6	6	6	36
अर्धपुष्कर में	6	6	6	18	6	6	6	6	6	6	36
कुल भेद	15	15	15	45	15	15	15	15	15	15	90

अतः कर्मभूमि के मनुष्यों के भेद: $15 \times 3 = 45$

अकर्मभूमि के मनुष्यों के भेद: $30 \times 3 = 90$

तथा लवणसमुद्र के अंतरद्वीपों के क्षेत्र : $56 \times 3 = 168$ भेद

कुल मनुष्य भेद: $101 \times 3 = 303$ क्षेत्र

देवताओं के 198 भेद

देव, जो दिव्य ऋद्धियों का भोग करते है, वे देव कहलाते है। जिसका वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, महल, वैक्रिय लब्धियाँ आदि दिव्य हो और जो इच्छानुसार क्रीड़ा कर सकें, वे देव कहलाते है।

भवनपति देवों के 25 भेद: 10 भवनपति + 15 परमाधामी

10 भवनपति देवों के नाम: (1) असुरकुमार (2) नागकुमार (3) सुपर्णकुमार (4) विद्युतकुमार (5) अग्निकुमार (6) द्वीपकुमार (7) उदधिकुमार (8) दिशाकुमार (9) वायु (पवन) कुमार (10) स्तनितकुमार। यह देव भवनों में निवास करते हैं, इसलिए इन्हें **भवनपति** कहा जाता है।

15 परमाधामी देवों के नाम: (1) अंब (2) अंबरिस (3) साम (4) सबल (5) रुद्र (6) वैरुद्र (7) काल (8) महाकाल (9) असिपत्र (10) धनुष्य (11) कुंभ (12) वालु (13) वैतरणी (14) खरस्वर (15) महाघोष। जो घोर पापों का आचरण करने वाले, क्रूर परिणाम उत्पन्न करने वाले, अत्यंत अधार्मिक देव होते हैं, उन्हें **परमाधामी** कहा जाता है।

वाणव्यंतर देवों के 26 भेद : 16 व्यंतर + 10 जृंभक

16 वाणव्यंतर देवों के नाम: (1) पिशाच (2) भूत (3) यक्ष (4) राक्षस (5) किन्नर (6) किंपुरुष (7) महोरग (8) गंधर्व (9) आणपन्नी (10) पाणपन्नी (11) ईसीवाई (12) भुईवाई (13) कंदिय (14) महाकंदिय (15) कोहंड़ (16) पयंगदेव। जो देव वनों की गुफाओं, पर्वतों, जंगलों आदि के अंतर में रहते हैं और जिन्हें घूमने-फिरने की रुचि होती है, उन्हें **वाणव्यंतर देव** कहा जाता है।

10 जृंभक देवों के नाम : (1) आण जृंभका (2) पाण जृंभका (3) लयण जृंभका (4) सयण जृंभका (5) वत्थ जृंभका (6) पुष्प जृंभका (7) फल जृंभका (8) बीज जृंभका (9) विज्जु जृंभका (विद्युत/अग्नि) (10) अवियत जृंभका (घर का सामान)

जो देव निरंतर क्रीड़ा में लीन रहते हैं, उन्हें जृंभका देव कहा जाता है। **"जृंभका"** का अर्थ होता है **मालिक देव**।

केवल जानकारी हेतु: कोई प्रश्न नहीं पूछे जाएँगे।

(1) अधोलोक में प्रथम नरक के तीसरे से बारहवें आंतर तक 10 भवनपति देव निवास करते हैं। तीसरे आंतरे में असुरकुमार के साथ 15 **परमाधामी देव** भी रहते हैं। (2) समपृथ्वी से नीचे प्रथम नरक का जो 1000 योजन ऊपरी दल है, उसमें से ऊपर और नीचे 100-100 योजन छोड़ देने पर, बीच के 800 योजन के दल में **वाणव्यंतर देवों** के नगर स्थित हैं। (3) उस 100 योजन के ऊपरी भाग में, ऊपर और नीचे 10-10 योजन दल छोड़ देने पर, बीच के 80 योजन में **जृंभक देव** रहते हैं। (4) **ज्योतिषी देव** - समपृथ्वी से 790 योजन से 900 योजन की ऊँचाई पर, मेरु

पर्वत के चारों ओर स्थित हैं। ये देव तिर्च्छालोक में स्थित हैं। (5) **वैमानिक देव**- ऊर्ध्वलोक में स्थित होते हैं। (6) **पहला किल्विषिक -** पहले और दूसरे देवलोक के नीचे है। **दूसरा किल्विषिक -** तीसरे और चौथे देवलोक के नीचे है। **तीसरा किल्विषिक** - पाँचवे और छट्ठे देवलोक के नीचे स्थित है। (7) पाँचवे देवलोक के पास, त्रसनाड़ी के किनारे **9 लोकान्ति**क देव निवास करते हैं।

ज्योतिषी देवों के 10 भेद

10 ज्योतिषी देवों के नाम: (1) चंद्र (2) सूर्य (3) ग्रह (4) नक्षत्र (5) तारा। यह पाँच चर (चलायमान) हैं, वे अढ़ाई द्वीप में हैं। इनके ही नाम वाले अन्य पाँच स्थिर देव अढ़ाई द्वीप के बाहर हैं। कुल 10 भेद। वे प्रकाश करने वाले देव होते हैं, इसलिए उन्हें ज्योतिषी देव कहा जाता है।

वैमानिक देवों के 38 भेद : 12 देवलोक, 3 किल्विषिक, 9 लोकान्तिक, 9 ग्रेवेयक, 5 अनुत्तर विमान

12 देवलोक के नाम: (1) सुधर्मा (2) ईशान (3) सनत्कुमार (4) माहेन्द्र (5) ब्रह्मलोक (6) लांतक (7) महाशुक्र (8) सहस्रार (9) आणत (10) प्राणत (11)) आरण (12) अच्युत। देव विमानों में निवास करते हैं, इसिलए उन्हें **वैमानिक देव** कहा जाता है।

3 किल्विषिक के नाम: (1) त्रय (तीन) पल्या (2) त्रय (तीन) सागरिया (3) तेर (तेरह) सागरिया। जो जीव तीर्थंकर की आशातना करते हैं, उत्सुत्र प्ररूपणा करते हैं, वे ऐसे **किल्विषिक देव** बनते हैं।

9 लोकान्तिक के नाम: (1) सारस्वत (2) आदित्य (3) वन्हि (4) वरुण (5) गर्दतोया (6) तोषिया (7) अव्याबाधा (8) अगिच्चा (9) रिठा।
ये देव ब्रह्मदेवलोक के अंतिम भाग में रहते है, उन्हें **लोकान्तिक** कहा जाता है।

9 **ग्रैवेयक के नाम:** (1) भद्दे (2) सुभद्दे (3) सुजाए (4) सुमाणसे (5) प्रियदंसणे (6) सुदंसणे (7) आमोहे (8) सुपडिबद्धे (9) जशोधरे। इन देवों के विमान पुरुष के आकृति जैसे लोक में ग्रीवा (गर्दन) के स्थान पर रहते हैं इसलिए उन्हें **ग्रेवेयक देव** कहा जाता है।

5 अनुत्तर विमान के नाम: (1) विजय (2) विजयंत (3) जयंत (4) अपराजित (5) सर्वार्थसिद्ध। इस विमानों में निवास करने वाले देवों के इन्द्रिय

विषय - शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्श आदि - सबसे श्रेष्ठ होते हैं, इसलिए उन्हें अनुत्तर देव कहा जाता है।

कुल देव भेद : भवनपति: 25, वाणव्यंतर: 26, ज्योतिषी: 10, वैमानिक: 38 = 99 देव। इनमें - 99 अपर्याप्त 99 पर्याप्त = 198 देव भेद।

2. अजीव तत्त्व

जो जड़ हो और चैतन्य रहित हो, उसे अजीव कहते हैं। अजीव का स्वरूप ही **अजीव तत्त्व** कहलाता है।

अजीव तत्त्व के 14 भेद इस प्रकार हैं:

1 धर्मास्तिकाय का स्कंध, 2 स्कंधदेश*, 3 स्कंधप्रदेश,	+ 3 भेद
4 अधर्मास्तिकाय का स्कंध, 5 स्कंधदेश, 6 स्कंधप्रदेश,	+ 3 भेद
7 आकाशास्तिकाय का स्कंध, 8 स्कंधदेश, 9 स्कंधप्रदेश,	+ 3 भेद
10 अद्धासमयकाल	+1 भेद

कुल = 3 + 3 + 3 + 1 = 10 अरूपी अजीव

1 से 10 - अरूपी अजीव (अदृश्य)

11 पुद्गलास्तिकाय का स्कंध, 12 देश, 13 प्रदेश, 14 परमाणु पुद्गल : 4 भेद

11 से 14- रूपी अजीव (द्रव्य) अतः कुल अजीव तत्त्व के भेद 14।

व्यवहार विस्तार नय से अजीव के 560 भेद

अरूपी अजीव के 30 भेद:

धर्मास्तिकाय के 5 भेद: (1) द्रव्य की दृष्टि से - एक (2) क्षेत्र की दृष्टि से - पूरे लोक के अनुसार (3) काल की दृष्टि से - अनादि-अनंत (4) भाव की दृष्टि से - अवर्ण, अगंध, अरस, अस्पर्श (अरूपी) (5) गुण की दृष्टि से - चलन सहाय (चलने में सहायता देने वाला)

अधर्मास्तिकाय के 5 भेद: (6) द्रव्य की दृष्टि से - एक (7) क्षेत्र की दृष्टि से - पूरे लोक के अनुसार (8) काल की दृष्टि से - अनादि-अनंत (9) भाव की दृष्टि से -

---

*धर्म, अधर्म और आकाशास्तिकाय के देश और प्रदेश स्कंध से पृथक नहीं हो सकते, इसलिए उन्हें “स्कंधदेश” और “स्कंधप्रदेश” कहा गया है। जबकि पुद्गलास्तिकाय के देश व प्रदेश स्कंध से पृथक हो सकते हैं।

अवर्ण, अगंध, अरस, अस्पर्श (अरूपी) (10) गुण की दृष्टि से - स्थिर सहाय (स्थिरता में सहायता देने वाला)। **आकाशास्तिकाय के 5 भेद :** (11) द्रव्य की दृष्टि से - एक (12) क्षेत्र की दृष्टि से - लोक और अलोक दोनों में व्याप्त (13) काल की दृष्टि से - अनादि-अनंत (14) भाव की दृष्टि से - अवर्ण, अगंध, अरस, अस्पर्श (अरूपी) (15) गुण की दृष्टि से - अवगाहना (स्थान प्रदान करने) का गुण। **काल*** **के 5 भेद:** (16) द्रव्य की दृष्टि से - अनंत (17) क्षेत्र की दृष्टि से - अढ़ाई द्वीप में व्याप्त (18) काल की दृष्टि से -अनादिअनंत + (19) भाव की दृष्टि से -अवर्णे, अगंधे, अरसे, अस्पर्शे (अरूपी) (20) गुण की दृष्टि से - वर्तना लक्षण (परिवर्तन लावे)। उपर्युक्त 20 भेदों में पूर्व बताए गए 10 अरूपी अजीव के भेद जोड़कर कुल: **30 अरूपी अजीव के भेद।**

रुपी अजीव के 530 भेद

पुद्गल में वर्ण के अनुसार 5 प्रकार: (1) काला (2) नीला (या हरा) (3) लाल (4) पीला (5) सफेद। प्रत्येक वर्ण के भीतर अन्य चार वर्ण नहीं पाए जाते, लेकिन शेष में निम्नलिखित भेद पाए जाते हैं: 2 गंध, 5 रस, 5 संठाण (संरचना), 8 स्पर्श। अत: 5 वर्ण × 20 गुण = **100 भेद**

स्कंध, देश, प्रदेश की परिभाषा : प्रदेशों के समूह को **अस्तिकाय** कहते हैं। अखंड द्रव्यरूप, संपूर्ण पदार्थ को अथवा अनंत आदि परमाणुओं के एकत्र समूह को स्कंध कहते हैं। स्कंध का कुछ भाग जो स्कंध से संबंधित है, उसे देश कहते हैं। स्कंध का अविभाज्य अंश, जिसे दो भागों में नहीं बाँटा जा सकता, परंतु जो स्कंध में ही संलग्न होता है, उसे प्रदेश कहते हैं। वही **प्रदेश** यदि स्कंध से अलग हो जाए और जिसे केवली की दृष्टि से भी विभाजित न किया जा सकें, उसे **परमाणु** कहते हैं।

---

*काल को अस्तिकाय नहीं कहा जाता, क्योंकि हर समय का काल भिन्न होता है। भूतकाल समाप्त हो गया, भविष्यकाल अभी उत्पन्न नहीं हुआ, और वर्तमान तो केवल एक समय का है। लेकिन यही वर्तमान काल अनंत जीवों और द्रव्यों पर एक साथ प्रभाव डालता है, इसीलिए उसे द्रव्य से अनंत कहा गया है।
+अनादि-अनंत - जिसकी न शुरूआत (आदि) है और न अंत।

गंध (2 प्रकार): (1) सुरभिगंध (सुगंध) (2) दुरभिगंध (दुर्गंध) प्रत्येक गंध में दूसरी गंध नहीं होती, परंतु अन्य 23-23 भेद पाए जाते हैं - 5 वर्ण, 5 रस, 5 संठान, 8 स्पर्श। अर्थात् $2 \times 23 =$ **46 भेद।**

रस (5 प्रकार): (1) तीखा (2) कड़वा (3) कसैला (4) खट्टा (5) मीठा। प्रत्येक रस में अन्य चार रस नहीं होते, परंतु अन्य 20 भेद मिलते हैं - ये 20: 5 वर्ण, 2 गंध, 5 संठाण, 8 स्पर्श। अतः $5 \times 20 =$ **100 भेद।**

संठाण (आकार) 5 प्रकार: (1) परिमंडल (चूड़ी के आकार का) (2) वट्ट (गोल लड्डू जैसा) (3) त्रंस (त्रिकोण) (4) चौरस (चौकोर) (5) आयात (छड़ी जैसा) प्रत्येक संठाण में अन्य चार संठाण नहीं होते, परंतु शेष 20 भेद मिलते हैं: 5 वर्ण, 2 गंध, 5 रस, 8 स्पर्श। अतः $5 \times 20 =$ **100 भेद।**

स्पर्श 8 प्रकार: (1) खुरदुरा (2) मुलायम (3) भारी (4) हल्का (5) ठंडा (6) गर्म (7) चिकना (8) सूखा। प्रत्येक स्पर्श में उसका एक विरोधी स्पर्श नहीं होता (जैसे - खुरदुरा व चिकना), शेष 6 स्पर्श प्राप्त होते हैं। उसके अति**रिक्त 20 भेद 5 वर्ण, 2 गंध, 5 रस, 5 संठाण, 6 स्पर्श। अतः $23 \times 8 = 184$ भेद**

अत: वर्ण100, गंध 46, रस100, संठाण100, स्पर्श 184 = कुल 530, इस प्रकार: रूपी अजीव के भेद = 530, अरूपी अजीव के भेद = 30 कुल = 560 भेद।

पाँच द्रव्यों की दृष्टांत से समझ: (1) धर्मास्तिकाय: जिसके द्वारा जीव और पुद्गल गमन कर सकते हैं - जैसे मछली को गति के लिए जल का आधार और लँगड़े को चलने के लिए लकड़ी सहायक होती है। **(2) अधर्मास्तिकाय:** जिसके द्वारा जीव और पुद्गल स्थिर रहते हैं- जैसे थके हुए यात्रीयों को छाया, स्थिर होने में उपकारक होते है। **(3) आकाशास्तिकाय:** जो सभी द्रव्यों को स्थान (रिक्त जगह) प्रदान करता है - जैसे ठोस दीवार में कील गड़ सकती है, या कमरे में एक दीपक की रोशनी भी समा सकती है और हज़ार दीपकों की भी। **(4) काल:** जिससे नया - पुराना पहचाना जाता है - जैसे सूर्य-चंद्र की गति से समय को मापा जाता है। बच्चा जन्मता है, युवा होता है, फिर वृद्ध - यह कार्य काल के कारण होता है। **(5) पुद्गल:** जिसका स्वभाव सड़ना, गिरना और विनाशशील होता है - जैसे ध्वनि, अंधकार, चंद्रमा की प्रभा, छाया, सूर्य का प्रकाश, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श आदि, ये सभी जड पदार्थ पुद्गल कहलाते हैं। ये पुद्गल 14 राजलोक के में फैले हुए होते हैं, और उनके प्रदेशों की गणना: 1 प्रदेशी, 2 प्रदेशी, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10 प्रदेशी... यावत्: संख्यात प्रदेशी, असंख्यात प्रदेशी या अनंत प्रदेशी होती हैं।

3. पुण्यतत्त्व

शुभ कमाया हुआ शुभ कर्मों के उदय से, आत्मा को सुखद फल प्रदान करता है, उसे पुण्य कहा जाता है। या फिर- जिसके करने से शुभ कर्मों का संचय और उदय होने पर सुख का अनुभव होता है, वह पुण्य कहलाता है। इसका स्वरूप पुण्यतत्त्व कहलाता है।

पुण्य बंध के 9 भेद: (1) अन्नपुन्ने: अन्न (भोजन) दान से पुण्य का उपार्जन होता है। **(2) पाणपुन्ने:** जल (पेय) दान से पुण्य का उपार्जन होता है। **(3) लयणपुन्ने:** स्थान या जगह देने से पुण्य का उपार्जन होता है। **(4) शयनपुन्ने:** शैय्या, पाट, पाटले आदि देने से पुण्य का उपार्जन होता है। **(5) वत्थपुन्ने:** वस्त्र देने से पुण्य का उपार्जन होता है। **(6) मनपुन्ने:** मन को शुभ रखने से पुण्य का उपार्जन होता है। **(7) वचनपुन्ने:** शुभ वचन बोलने से पुण्य का उपार्जन होता है। **(8) कायपुन्ने:** शरीर से शुभ प्रवृत्ति करने से पुण्य का उपार्जन होता है। **(9) नमस्कारपुन्ने:** गुणीजनों को नमस्कार करने से पुण्य का उपार्जन होता है।

पुण्यतत्त्व 42 शुभ फलों से भुगता जाता है

वेदनीय कर्म के उदय से 1 भेद: (1) शाता वेदनीय: सुख का अनुभव कराता है। **आयुष्य कर्म के उदय से 3 भेद: (2) देव का आयुष्य (3) मनुष्य का आयुष्य (4) तिर्यंच का आयुष्य (जुगलिया की अपेक्षा से) नामकर्म के उदय से 37 भेद: (5) देव गति (6) मनुष्य गति (7) पंचेन्द्रिय जाति (8) औदारिक शरीर:** जो सड़ता, गलता, नष्ट होता है, मृत्यु के बाद शव पड़ा रहता है। जो उदार यानि प्रधान पुरुष जैसे तिर्थंकर, गणघर आदि पुरुषों को मोक्षगति मिलने में सहाय करता है। **(9) वैक्रिय शरीर*:** जो न सड़ता है, न गलता है, न नष्ट होता है; मृत्यु के बाद कपूर जैसा विलीन हो जाता है वह वैक्रिय शरीर है। वैक्रिय यानि रूप बदलने की शक्ति। जिससे एक, अनेक, छोटे, बडे, दृश्य, अदृश्य आदि विभिन्न रूप विभिन्न क्रिया से बनावे। जिस में हड्डी, मांस आद नहीं होते। **(10) आहारक शरीर:** 14 पूर्वी साधु तप आदि से प्राप्त विशेष लब्धि द्वारा उत्तम स्फटिक के समान परमाणुओं से जघन्य 1 हाथ न्यून, उत्कृष्ट 1 हाथ का शरीर बना सकते है, उसे

---

*देव और नारकी को वैक्रिय शरीर जन्म से मिलता है वह भवप्रत्ययिक। मनुष्य और तिर्यंच को तप आदि लब्धि से वैक्रिय शरीर होता है वह लब्धिप्रत्ययिक।

आहारक शरीर कहते है। **(11) तैजस शरीर:** जिससे शरीर में उष्णता रहती है और भोजन पचता है। तेजोलब्धि से तेजोलेश्या (उष्ण या शीत परमाणु) छोडनेमें कारणभुत शरीर को तैजस शरीर कहते हैं। **(12) कार्मण शरीर:** जिस में आठों कर्मों का स्कंध संचित रहता है। **(13) औदारिक शरीर अंग-उपांग:** औदारिक शरीर के सारे अवयवों की प्राप्ति होना। **(14) वैक्रिय शरीर अंग-उपांग। (15) आहारक शरीर अंग-उपांग। (16) वज्रऋषभनाराच संघयण:**अत्यंत मजबूत अस्थि संरचना। वज्र यानी किल, वृषभ यानी पट्टी, नाराच याने दोनों ओर मर्कटबंध। जिस शरीर की रचना में दो हड्डियों को दोनों तरफ से मर्कटबंध द्वारा बांधा गया हो। उसपर हड्डियों का पट्टा हो। उसे कील जैसी हड्डी से वापीस कसा हो, ऐसा मजबूत संघयण। **(17) समचतुरंस्र संस्थान:** पूर्ण समरूप और शोभायुक्त आकृति। **(18) शुभ वर्ण:** (तीन: लाल, पीला, सफेद) **(19) शुभ गंध:** (एक: सुरभिगंध) **(20) शुभ रस:** (तीन: कसैला, खट्टा, मीठा) **(21) शुभ स्पर्श:** (चार: कोमल, हल्का, उष्ण, चिपचिपा)। **(22) शुभ विहायगति:** गंधहस्ति जैसी शुभ चाल। **(23) देवानुपूर्वी:** शरीर छोड़ते समय देवगति की ओर ले जाने वाला कर्म। **(24) मनुष्यानुपूर्वी:** शरीर छोड़ते समय मनुष्यगति की ओर ले जाने वाला कर्म। **(25) अगुरुलघु नाम:** शरीर न अधिक भारी न अत्याधिक हल्का। **(26) पराघात नाम:** जिससे जीव के शरीर में दूसरों को मार सकने की शक्ति मिले (जैसे साँप का विष) सिंहके नख आदि अथवा जिसके उदयसे जिव अन्योंके लिए अजेय बन जाए। अन्योंको प्रमावित करे। **(27) उच्छवास नाम:** जिससे श्वास-प्रश्वास की क्रिया संभव हो। **(28) उद्योत नाम:** जिससे शरीर शीत प्रकाश (चंद्रमा जैसा) उत्पन्न करें जैसें की चंद्र के पृथ्वीकाय का शरीर, चमकते आगिये। **(29) आताप नाम:** जिससे शरीर गरम प्रकाश (सूर्य जैसा) उत्पन्न करें जैसें की सूर्य के पृथ्वीकाय का शरीर। **(30) तीर्थंकर नाम:** जिससे तीर्थंकर पद प्राप्त हो। **(31) निर्माण नाम:** जिससे अंग-उपांग सुव्यवस्थित प्राप्त हो। **(32) त्रस नाम:** जिस से जिव स्वयं हलन चलन कर सके एसा शरीर प्राप्त हो। **(33) बादर नाम:** जिससे बादरता, स्थूलता प्राप्त हो। **(34) पर्याप्त नाम:** जिससे सभी आवश्यक पर्याप्तियाँ प्राप्त हों। **(35) प्रत्येक नाम:** जिससे जीवको स्वयंका स्वतंत्र शरीर प्राप्त हो। **(36) स्थिर नाम:** जिससे शरीर के दांत हड्डीयाँ आदि अंग स्थिर रहें। **(37) शुभ नाम:** जिससे शरीर सुंदर हो (नाभि से ऊपर)। **(38) सौभाग्य नाम:** जिससे जीव अन्योको प्रिय बने। **(39) सुस्वर नाम:** जिससे मधुर स्वर प्राप्त हो। **(40) आदेय नाम:** जिससे वचन

प्रभावशाली आदरणीय हो। **(41) यश:कीर्ति नाम:** जिससे संसार में यश और कीर्ति फैले।

गोत्रकर्म के उदय से: 1 भेद 42 ऊँच गोत्र(जाति, बल आदि 8 बोल में श्रेष्ठता)

पुण्य अघाती कर्म द्वारा ही भोगा जा सकता है। सो उसमें सिर्फ 4 अघाती कर्म की प्रकृतीयाँ होती है।

पुण्य की 42 प्रकृति

वेदनीय कर्म	आयुष्य कर्म	नाम कर्म	गोत्र कर्म
(1) शाता वेदनीय	(3) देव का, मनुष्य का, तिर्यंच का	(37) **गति:** देव, मनुष्य **जाति:** पंचेन्द्रिय **शरीर:** औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण **अंगोपांग:** औदारिक, वैक्रिय, आहारक **संघयण:** वज्रवृषभनाराच **संस्थान:** समचतुरंस्त्र **शुभ:** वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, विहायगति **आनुपूर्वी:** देव, मनुष्य **प्रत्येक प्रकृति:** अगुरुलघु, पराघात, उच्छवास, उद्योत, आतप, तीर्थंकर, निर्माण **त्रस दशक:** त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सौभाग्य, सुस्वर, आदेय,यशोकीर्ति	(1) 42 ऊँच गोत्र

4. पापतत्त्व

अशुभ कमाई द्वारा, अशुभ कर्मों के उदय से आत्मा को कड़वे फल प्रदान करता है, उसे पाप कहा जाता है। अर्थात् - जिसके करने से अशुभ कर्मों का संचय और उदय होने से दुःख का अनुभव होता है, वह पाप कहलाता है। इसका स्वरूप पापतत्त्व कहलाता है।

पाप बंधन के 18 कारण (प्रकार)

(1) प्राणातिपात(जीव हिंसा) (2) मिथ्यावाद (झूठ बोलना) (3) अदत्तादान (चोरी) (4) मैथुन (काम संबंध) (5) परिग्रह (संग्रह, मोह) (6) क्रोध (7) मान (घमंड) (8) माया (छल) (9) लोभ (10) राग (11) द्वेष (12) कलह (झगड़ा) (13) अभ्याख्यान (दोषारोपण) (14) पैशुन्य (निंदा) (15) परपरिवाद (अन्य की आलोचना) (16) रति-अरति (संसार में आसक्ति/धर्म में अनिच्छा) (17) माया-मोसो (छल और छिपाव) (18) मिथ्या-दर्शन शल्य (गलत श्रद्धा)।

पाप के फल 82 प्रकार से भुगते जाते हैं:

ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से 5 भेद: (1) मति ज्ञानावरणीय: पाँचों इन्द्रियों और मन के माध्यम से प्राप्त होने वाला सच्चा (यथार्थ)ज्ञान मति ज्ञानावरणीय है। इस पर जो आवरण है, वह मति ज्ञानावरणीय है। **(2) श्रुत ज्ञानावरणीय:** शब्दों के माध्यम से अर्थ का होने वाला यथार्थ ज्ञान या सूत्र ज्ञान ही श्रुतज्ञान है। इसके ऊपर का आवरण ही श्रुत ज्ञानावरणीय है। **(3) अवधि ज्ञानावरणीय:**आत्मा के माध्यम से रूपी द्रव्यों का जो सीमित यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है, उसे अवधि ज्ञान कहते हैं, तथा उसके ऊपर जो आवरण है, उसे अवधि ज्ञानावरणीय कहते हैं। **(4) मन:पर्यव ज्ञानावरणीय:**वह ज्ञान जो अढीद्वीप में रहने वाले संज्ञी जीवों के मन के भावों को जानता है वह मन: पर्यवज्ञान है। इसके ऊपर का आवरण मनः पर्यव ज्ञानावरणीय है।**(5) केवल ज्ञानावरणीय:**संपूर्ण लोका लोक में रहे हुए सर्व द्रव्यो के और सर्व गुणों की सर्व पर्यायो को आत्मा द्वारा एक साथ जानने को केवल ज्ञान कहते हैं। इस पर जो आवरण है, वह केवल ज्ञानावरणीय है।

दर्शनावरणीय कर्म के उदय से 9 भेद: (6) चक्षु दर्शनावरणीय: नेत्रों द्वारा किसी वस्तु का सामान्य बोध चक्षु दर्शन कहलाता है। उस पर आवरण करना। **(7) अचक्षु दर्शनावरणीय:** आँख और मन के अलावा अन्य इंद्रियों के माध्यम से किसी वस्तु का सामान्य बोध अचक्षु दर्शन कहलाता है।उस पर आवरण करना।**(8) अवधि दर्शनावरणीय:** आत्मद्रव्य के माध्यम से सीमित क्षेत्र में विद्यमान रुपी वस्तुओं का सामान्य ज्ञान,अवधिदर्शन है। इस पर आवरण। अवधिज्ञान या विभंगज्ञान होने से पहले होने वाले सामान्य ज्ञान पर आवरण। **(9) केवल दर्शनावरणीय:**संपूर्ण जगत् के समस्त पदार्थों का सामान्य ज्ञान ही

केवलदर्शन है। यह उस पर किया गया आवरण है। **(10) निद्रा:** वह सुख से सोता है, सुख से जागता है। **(11) निद्रा-निद्रा:** वह दर्द में सोता है, दर्द में जागता है। **(12) प्रचल:** वह बैठे-बैठे सोता है। **(13) प्रचला-प्रचला:** वह बोलते-बोलते, चलते- चलते सोता है। **(14) थीणद्धि (स्त्यानदर्धि) निद्रा:** दिन में सोचे गए साधारण या असाधारण कार्यों को नींद में करना थीणद्रि निंद्रा है। जब थीणद्रि निंद्रा कर्म का उत्कृष्ट उदय होता है, तब चौथे आरे के वज्रऋषभनाराच संघयण वाले जीव में वासुदेव का आधा बल आ जाता है।

यदि कोई यह निंद्रा में अपने जीवन का त्याग करता है, तो वह मर कर नरक में जाता है।(यह धारणा उत्कृष्ट बल की है।जघन्य बल या मध्यम बल के होने पर वह किसी भी गति में जा सकता है।)

वेदनीय कर्म के उदयसे 1 भेद: (15) अशाता वेदनीय: दुःख का अनुभव कराता है।

मोहनीय कर्म के उदयसे 26 भेद: (क) अनंतानुबंधी (4): **(16) क्रोध, (17) मान, (18) माया, (19) लोभ:** जो चार कषाय सम्यक् दर्शन में बाधक हैं, अनंत संसार को बढाते हैं। (ख) अप्रत्याख्यानी (4): **(20) क्रोध, (21) मान, (22) माया, (23) लोभ:** जो चार कषाय श्रावकता प्राप्त नहीं होने देते, एक वर्ष रहते हैं। (ग) प्रत्याख्यानावरणीय (4): **(24) क्रोध, (25) मान, (26) माया, (27) लोभ:** जो चार कषाय साधुता में बाधक हैं, चार माह रहते हैं। (घ) संज्वलन (4): **(28) क्रोध, (29) मान, (30) माया, (31) लोभ:** जो चार कषाय वीतरागता में बाधक हैं, पंद्रह दिन रहते हैं। (ङ) नौ नोकषाय (9): **(32) हास्य:** बिना कारण या कारण वश हँसी आना। **(33) रति:** संसार व पाप में रुचि। **(34) अरति:** धर्म में अरुचि व आलस्य। **(35) भय:** भय उत्पन्न होना। **(36) शोक:** चिंता, उदासि, शोक उत्पन्न होना। **(37) दुर्गंछा:** वस्तु/व्यक्ति से घृणा। **(38) स्त्रीवेद:** स्त्री को पुरुष समागम के भाव। **(39) पुरुषवेद:** पुरुष को स्त्री समागम के भाव। **(40) नपुंसकवेद:** नपुंसक को पुरुष और स्त्री दोनों के समागम के भाव। **(41) मिथ्यात्व मोहनीय:** नव तत्त्वों में व जैन धर्म में श्रद्धा न होना। सुदेव, सुगुरु, सुधर्म पर श्रद्धा न होना। जिनेश्वर भगवंत ने बताए तत्त्वों पर अरुची और अतत्त्वों पर रुचि करना।

आयुष्य कर्म के उदय से 1 भेद: (42) नरक का आयुष्य।

नामकर्म के उदय से 34 भेद: (43) नरक गति, (44) तिर्यंच गति, (45)

एकेन्द्रिय जाति, (46) दोइन्द्रिय जाति (47) तेइन्द्रिय जाति, (48) चौरेन्द्रिय जाति

पाँच प्रकार के संघयण (हड्डियों की मजबूती): (49-53)

49) ऋषभनाराच संघयण: इसके दोनों तरफ मर्कटबंध होते हैं और ऊपर एक पट्टा होता है। **(50)नाराच संघयण:** इसके दोनों तरफ मर्कटबंध होते हैं। **(51) अर्धनाराच संघयण:** इसके एक ओर मर्कटबंध और दूसरी ओर केवल एक कील होता है। **(52) किलकु (कीलिका) संघयण:** दोनों हड्डियाँ एक कील से जुड़ी होती हैं। **(53) छेवटुं (सेवार्त) संघयण:** दोनों हड्डियाँ जुड़ी हुई हैं, कोई कील नहीं है।

पाँच प्रकार के संस्थान (शारीरिक आकार): (54–58)

(54) न्यग्रोध परिमंडल संस्थान: कमर से सिर तक शोभायमान शरीर, **(55) सादि संस्थान:** पैर से कमर तक शोभायमान शरीर, **(56) वामन संस्थान:** हाथ, पैर, सिर की आकृति छोटी, (नाटी) **(57) कुब्ज संस्थान:** हाथ, पैर, सिर जैसे अंग छोटे-बडे पर अन्य अंग सुंदर होना, **(58) हूंड संस्थान:** पूरे शरीर के सभी अंग अशुभ **(59) अशुभ वर्ण** (काला, नीला), **(60) अशुभ गंध** (दुर्गंध), **(61) अशुभ रस** (तीखा, कड़वा), **(62) अशुभ स्पर्श** (खुरदुरा, भारी, ठंडा, सूखा), **(63) अशुभ विहायगति:** ऊँट जैसी चाल, **(64) नरकानुपूर्वी:** मृत्यु के बाद विग्रहगति जाने वाले जीव को नरक में ले जाने वाला **(65) तिर्यंचानुपूर्वी:** मृत्यु के बाद विग्रहगति जाने वाले जीव को तिर्यंच गति में ले जाने वाला **(66) उपघात नाम:** शरीर के ही अंग पीड़ा दें (जैसे गांठ, आदि), **(67) स्थावर नाम:** जो हलन चलन कर ना सके एसा, एकेन्द्रिय शरीर मिलना, **(68) सूक्ष्म नाम:** सूक्ष्म शरीर, जीव स्वयं की प्राप्ति, **(69) अपर्याप्त नाम:** जिसमें परिपूर्ण पर्याप्तियाँ ना मिले, **(70) साधारण नाम:** एक शरीर में अनंत जीव हो। **(71) अस्थिर नाम:** जैसे जीभ, त्वचा इत्यादि अस्थिर हो। **(72) अशुभ नाम:** अशोभनीय शरीर (नाभि के नीचे), **(73) दुर्भाग्य नाम:** जिससे जीव अनयोको अप्रिय बन जाए। **(74) दुस्वर नाम:** खराब व घोघरा कंठ, **(75) अनादेय नाम:** जिससे वचन अमान्य-अनादरणिय हो, **(76)अयश:कीर्ति नाम:**जिससे अपयश व अपकीर्ति फैले।

गोत्रकर्म के उदय से 1 भेद: (77) नीच गोत्र: जाति, बल आदि 8 बोल में हीनता

अंतराय कर्म के उदय से 5 भेद: (78) दानांतराय: दान देने में बाधा, **(79) लाभांतराय:** लाभ लेने मे बाधा, **(80) भोगांतराय:** एकबार भुगतने जैसी वस्तु में

बाधा **(81) उपभोगांतराय:** बारबार भुगतने जैसी वस्तु में बाधा, **(82) वीयाँतराय:** वीर्य शक्ति का योग्य उपयोग करने में बाधा।

पाप का संबंध सभी आठ कर्मों से होता है, इसीलिए उसमे सभी आठों कर्मों की प्रकृति होती है।

पाप की 82 प्रकृति

ज्ञानावरणीय कर्म	दर्शनावरणीय कर्म	वेदनीय कर्म	मोहनीय कर्म
(5) मति ज्ञानावरणीय श्रुत ज्ञानावरणीय अवधि ज्ञानावरणीय मन:पर्यव ज्ञानावरणीय केवल ज्ञानावरणीय	(9) चक्षु दर्शनावरणीय अचक्षु दर्शनावरणीय अवधि दर्शनावरणीय केवल दर्शनावरणीय निद्रा , निद्रा निद्रा प्रचला, प्रचला प्रचला थीणद्धि निद्रा	(1) अशाता वेदनीय	(26) अनन्तानुबंधी कषाय - 4 अप्रत्याखानी कषाय - 4 प्रत्याखानी कषाय - 4 संज्वलन कषाय - 4 **9 नो-कषाय:** हास्य, रति, अरति, भय, शोक, दुर्गछा, स्त्री वेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद मिथ्यात्व मोहनीय (1)

आयुष्य कर्म	नाम कर्म	गोत्र कर्म	अंतराय कर्म
(1) नरक का	(34) **गति:** नरक, तिर्यंच **जाति:** एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेंद्रिय **संघयण:** ऋषभनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलकु और सेवार्त्त संघयण **संस्थान:** न्यग्रोध परिमंडल, सादि, वामन, कुंब्ज, हूंड संस्थान **अशुभ:** वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, विहायगति **आनुपूर्वी:** नरक, तिर्यंच **प्रत्येक प्रकृति:** उपघात नाम **स्थवर दशक:** स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भाग्य, दुःस्वर, अनादेय, अयशोकिर्ती	(1) नीच गोत्र	(5) दानांतराय लाभांतराय भोगांतराय उपभोगांतराय वीर्यांतराय

5. आश्रव तत्त्व

आत्मारूपी सरोवर में, इंद्रिय रूपी छिद्र से अव्रत एवं अपच्चकखाण, विषय और कषायों के सेवन द्वारा पुण्य-पाप रूपी कर्मजल का प्रवाह प्रवेश करता है, तो वह आश्रव कहलाता है। अर्थात् जिससे नवीन शुभाशुभ कर्म की आय होती है, जैसे हिंसा आदि उपादानात्मक कारणों से कर्म बँधते है, वह आश्रव। उसका स्वरूप वह आश्रव तत्व है।

आश्रव तत्त्व के सामान्य प्रकार के 20 भेद

(1) मिथ्यात्व: नव तत्त्वों में यथार्थ श्रद्धा न होना, सुदेव, सुगुरु, सुधर्म में यथार्थ श्रद्धा न होना, जिनवाणी पर अरुचि और अन्य मतों में रुचि। **(2)अव्रत:** 12 व्रत, 5 महाव्रत या कोई व्रत न लेना। **(3) प्रमाद:** आत्म लक्ष से हटकर की जाने वाली हर प्रवृत्तियाँ पाँच प्रमाद: (मद्य, विषय, कषाय, निद्रा, विकथा) का सेवन। **(4) कषाय**: जिससे संसार की वृद्धि हो। **(5) अशुभ योग:** मन, वचन, काया के अशुभ योगो में प्रवर्तन। (6–10 पाँच पापाचार:) **(6) प्राणातिपात**: जीवहिंसा, **(7) मृषावाद:** असत्य - झूठ, **(8) अदत्तादान:** चोरी, **(9) मैथुन:** अब्रह्मका सेवन, **(10) परिग्रह**:आसक्ति(संग्रह-मोह)।(11-15 पाँच इंद्रियों का असंवर:) **(11) श्रोतेन्दिय असंवर**: मनपसंद शब्दों से राग और नापसंद शब्दों पर द्वेष भाव। **(12) चक्षुइन्द्रिय असंवर**: मनपसंद रूप से राग और नापसंद रूप पर द्वेष भाव। **(13) घ्राणेन्द्रिय असंवर**: मनपसंद गंध से राग और नापसंद गंध पर द्वेष भाव। **(14) रसनेन्द्रिय असंवर**: मनपसंद रस से राग और नापसंद रस पर द्वेष भाव। **(15) स्पर्शनेन्द्रिय असंवर:** मनपसंद स्पर्श से राग और नापसंद स्पर्श पर द्वेष भाव। इन इंद्रियों द्वारा मनोहर विषयों में राग व अमनोज्ञ में द्वेष। **(16) मन असंवर**: मन का आर्त-रौद्र ध्यान में प्रवृत्त होना। **(17) वचन असंवर:** असत्य, कटु, अपवित्र वाणी बोले। **(18) काय असंवर:** शरीर से विषय, कषाय, 18 पापों में प्रवृत्ति। **(19) भंड:** उपकरण अयत्ना से रखे-लेवे। **(20) शूचि-कुसग्ग करे:** घास की नोंक पर पानी टिके उतनी देर भी प्रमाद करे। (शुचि -सुई, कुसग्ग - घास का अग्रभाग)

विशेष प्रकार से आश्रव तत्त्व के 42 भेद

(1–5) पाँच पापाचार - प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह।

(6–10) पाँच इंद्रिय असंवर

(11–13) मन, वचन, काय असंवर

(14–17) चार कषाय - क्रोध, मान, माया, लोभ करें

यह 17 एवं निम्न लिखित 25 क्रियायें मिलकर 42 भेद।

25 क्रियाएँ - जो आश्रव के कारण बनती हैं: **(1) काइया क्रिया:** शरीर को अयत्नपूर्वक प्रवर्तावे, **(2) अहिगरणीया:** हथियार बनाना/बेचना **(3) पाउसिया :** जीव/अजीव पर द्वेष, करना **(4) पारितावणीया:** स्वयं या दूसरों को कष्ट देना **(5) पाणाईवाईया:** स्व के या दूसरों के प्राण का नाश करना, **(6) आरंभिया:** किसी हेतु से छकाय का आरंभ करना, **(7) परिग्गहिया:** जीव या अजीवका संग्रह कर मोह करना, **(8) मायावत्तिया:** छल-कपट करना, **(9) अप्रत्याख्यानवत्तिया:** कोई त्याग/प्रतिज्ञा न करना, **(10) मिथ्यादर्शनवत्तिया:** जिनवाणी से विपरीत या कम अधिक श्रद्धा रखना, प्ररूपणा करना **(11) दिट्ठिया:** कुतूहलता से राग-द्वेष से जीव-अजीवको देखने की क्रिया, **(12) पुट्ठिया:** रागवश जीव या अजीवको स्पर्श करना, **(13) पाडुच्चिया:** जीव या अजीव के निमित्त से राग-द्वेष होना, **(14) सामंतोवणिवाईया:** जीव तथा अजीव का संग्रह करे या प्रशंसा सुन आनंद पाए या दूध, दहीं, घी, तेल के बरतन को खुला छोड़ने से होनेवाली जीवहिंसा, **(15) साहत्थिया:** जीवों को आपस में लड़ाना, या अजीवको एक दुसरेसे टकरा कर तोडें **(16) नेसत्थिया:** जीव या अजीवको अयत्ना से फेंकना, शस्त्र बनवाना, वाव, कुआँ खुदवाना आदि, **(17) आणवणिया:** जीव या अजीवको बिना अनुमति ग्रहण करना, **(18) वेदारणिया:** जीव या अजीवके कषायवश टुकडे करना, **(19) अनाभोगवत्तिया:** बिना उपयोग या पोंजे बिना वस्तु लेना या रखना, **(20) अणवकंखवत्तिया:** स्व एवं पर के हित की उपेक्षा करना या यहलोक परलोक बिघडे ऐसे कार्य करना। **(21) पेज्जवत्तिया:** रागवश माया व लोभ करना, **(22) दोसवत्तिया:** द्वेषवश क्रोध और मान करना, **(23) प्पउग्ग:** मन, वचन, काय के अशुभ योग, **(24) सामुदानिया:** कई के साथ मिलकर आरंभ जन्य कार्य करना, **(25) इरियावहिया क्रिया:** वीतरागी को योग के प्रवर्तनसे लगे वह।

दोनों मिलाकर 17 + 25 = कुल 42 भेद

6. संवर तत्त्व

आत्मारूपी सरोवर में कर्मरूपी जल के प्रवाह को व्रत, प्रत्याख्यान आदि के माध्यम से रोका जाए, वह संवर कहलाता है। अर्थात् आश्रव का निरोध करना ही संवर है। इसका स्वरूप संवर तत्त्व कहलाता है।

संवर तत्त्व के सामान्य 20 भेद

(1) समकित (2) व्रत प्रत्याख्यान (3) अप्रमाद (4) अकषाय (5) शुभ योग (6) जीवदया (7) सत्य वचन (8) दत्तव्रत ग्रहण (9) शील का पालन (10) अपरिग्रह (11) श्रवणेन्द्रिय संवर (12) चक्षुइन्द्रिय संवर (13) घ्राणेन्द्रिय संवर (14) रसनेन्द्रिय संवर (15) स्पर्शेन्द्रिय संवर (16) मन संवर (17) वचन संवर (18) काय संवर (19) भंड-उपकरण को यत्नपूर्वक लेना-रखना (20) शुचि-कुसग न करना।

संवर तत्त्व के विशेष 57 भेद

5 समिति, 3 गुप्ति (अष्ट प्रवचन माता) (8), बाईस परिषह (22), दस यति धर्म (10), बारह भावना (12), पांच चारित्र (5), कुल भेद = 57.

अष्ट प्रवचन माता: समिति: आवश्यक कार्य के लिए यत्नापूर्वक की सम्यक् प्रवृत्ति। **गुप्ति:** 3 योग को अशुभ प्रवृत्ति से रोकना। 8 भेद - 5 समितियाँ और 3 गुप्तियाँ। **(1) ईरिया समिति:** देख कर सावधानीपूर्वक चलना, साडे तीन हाथ प्रमाण जमीन नजरों से देखकर चलना। **(2) भाषा समिति:** सम्यक् प्रकारसे निर्वद्य भाषा बोलना सत्य एवं शांत वचन, **(3) एषणा समिति:** निर्दोष आहार, वस्त्र, पात्र एवं 14 प्रकार के दान की गवेषणा, **(4) आयाणभंडमत्तनिक्खेवणया समिति :** वस्तुओं को, उपकरण को यत्न से लेना-रखना, **(5) उच्चार पासवण खेल जल्ल सिंघाण पारिठावणिया समिति:** मलमूत्र आदि परठने की वस्तुओ का सम्यक् त्याग, जतना पूर्वक परठना **(6) मनोगुप्ति:** अशुभ विचारों पर रोक **(7) वचनगुप्ति:** अशुभ वचनों पर रोक, **(8) कायगुप्ति:** अशुभ काया पर रोक।

22 परिषह- परिषह: मोक्षमार्ग में स्थित रहने एवं, कर्मों के क्षय हेतु जो कष्ट समभाव से सहन किए जाते हैं, उसे परिषह कहते है। **(1) क्षुधा:** भूख, **(2) तृष्णा:** प्यास, (3) शीत - सर्दी, (4) उष्ण - गर्मी, (5) दंसमसग - डांस/मच्छर काटनेका, **(6) अचेल:** सफेद, अल्प मूल्यवान पुराने/मलिन और जीर्ण वस्त्र, **(7) अरति:** दु:ख/कंटाला, **(8) स्त्री:** स्त्रीजन्य होनेवाला, **(9) चर्या:** चलने का, **(10) बैठने का:** भयानक स्थान में बैठना पडे, **(11) सेज:** निवास स्थान का कष्ट, **(12) आक्रोशवचन:** कठोर वचन सुनना पडे, **(13) वध:** मार खाना पडे, **(14) जाचना:** भिक्षा माँगना, **(15) अलाभ:** किसी चीज - वस्तु की याचना करने पर भी उसे ना पाना, **(16) रोग:** रोग, रोग के कारण से होने वाला, **(17) तृणस्पर्श:**

सूखे घास के बीछाने के स्पर्श से होने वाला दुःख, **(18) मैल:** गंदे कपडे और गंदा शरीर, **(19) सत्कार/पुरस्कार:** मान सन्मान मिले, **(20) प्रज्ञा:** कोई प्रश्न पूछे तो ज्ञान की अस्पष्टता के कारण उसका समाधान ना दे पाने से हीनता महसूस करना, **(21) अज्ञान:** ज्ञान समझमें ना आये, उसका, **(22) दंसण:** समकित के सूक्ष्म विचारों को सुनकर धर्म में अश्रद्धा करनेका।

दस यतिधर्म - यतिधर्म (श्रमण धर्म): साधु और श्रावक दोनों को चारित्र पालन के लिए जानने और आचरण करने योग्य धर्म श्रमण धर्म है। **(1) खंति**: क्षमा (क्रोध विजय) **(2) मुत्ति:** मृदुता/निर्लोभता/लोभ विजय **(3) अज्जवे:** सरलता (माया का विजय) **(4) मध्धवे:** नम्रता (मान विजय) **(5) लाघवे:** लघुता **(6) सच्चे:** सत्य वचन बोलना **(7) संजमे:** संयम पालन (17 प्रकार), **(8) तवे:** तप- 12 प्रकार के तप करना, कष्ट सहन करना, इच्छा निरोध करना **(9) अकिंचणे:** अकिंचन्य- परिग्रह का त्याग, ममत्व रहित बनना **(10) बंभचेरवासे:** ब्रह्मचर्य का नव वाड सहित पालन।

बारह भावनाएँ - भावना: जिससे आत्मा को भावित करना चाहिए और जिसमें आत्मा के प्रशस्त भाव प्रगट होते हैं। **12 भेद - (1) अनित्य भावना:** संसार के सभी पदार्थ अनित्य, अस्थिर है ऐसा मानना - भरत चक्रवर्ती। **(2) अशरण भावना :** संसार में कोई किसीका शरणभूत नहीं, केवल धर्म ही सच्चा शरण है - अनाथी मुनि। **(3) संसार भावना:** संसार में अनादि काल से जीव भ्रमण करता है और दुःख सहता है। संसार में जो इस भव में माँ है वह अगले भव में पत्नि, या पत्नि है वह माँ होती है। पिता - पुत्र या पुत्र - पिता बनता है ऐसी भावना - मृगापुत्र। **(4) एकत्व भावना:** जीव अकेला आया है, अकेला जाएगा, अकेला ही सुख-दुःख को भुगतेगा, उसका कोई साथी, कोई संगाथी नहीं। आत्मा अकेली है ऐसी भावना - नमि राजर्षि। **(5) अन्यत्व भावना:** आत्मा शरीर से भिन्न है, कर्म का बंध करके विभिन्न काया को धारण करता है, वैसे ही धन, संपति, स्वजन आदि भी भिन्न है ऐसी भावना - मरुदेवी माता। **(6) अशुचि भावना:** यह शरीर रस, खुन, मांस, चरबी, हड्डी, मज्जा, वीर्य, परु और आंतों आदि पुद्गलों से बना है। जिस में नौ द्वारों से सदा ही अशुचि बहती रहती है। ऐसा अपवित्र शरीर कभी भी पवित्र नहीं होने वाला ऐसी भावना भाना - सनत चक्रवर्ती। **(7) आश्रव भावना:** कर्मो की आवक पांच आश्रव से होती है और जिससे जिव भविष्य में दुःखी होता है ऐसा चिंतन - समुद्रपाल मुनि। **(8) संवर भावना:** व्रत, नियम, पच्चक्खान से

आश्रव रोकना, संवर के उपायों का चिंतन - हरिकेशी मुनि। **(9) निर्जरा भावना:** 12 प्रकार के तप से पूर्व में बंधे कर्म के क्षय का विचार - अर्जुनमाली मुनि **(10) लोक भावना:** लोक के स्वरूप का चिंतन करना, जैसे कि इस जीवने पूरे लोक की जन्म-मरण करके स्पर्शना की है - शिवराज ऋषि **(11) बोधि भावना:** पुन्य के योग से मनुष्य भव, आर्यक्षेत्र, निरोगी काया तथा धर्मश्रवण आदि की प्राप्ति हो सकती है, लेकिन सम्यक्त्व, तीन तत्त्व या धर्मसामग्री की प्राप्ति दुर्लभ है - ऋषभदेव के 98 पुत्र। **(12) धर्म भावना:** केवली प्ररूपित धर्म, धर्म के साधन, साधना, ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूपी रत्नत्रय पाना भी दुर्लभ है और धर्म के उपकारक अरिहंत आदि भगवान को पाना दुर्लभ है - धर्मरूचि अणगार।

पाँच प्रकार के चारित्र: (1) सामायिक (2) छेदोपस्थापनीय (3) परिहार विशुद्ध (4) सूक्ष्मसंपराय (5) यथाख्यात चारित्र।

चारित्र: जो आते हुए कर्मों को रोक ले अथवा आठ कर्मों का नाश करे वह चारित्र है। संयमरूप आचरण को चारित्र कहते है।

(1) सामायिक चारित्र - सम यानि राग-द्वेष रहितता, आय यानि जहाँ प्राप्त होती है। जिससे ज्ञान, दर्शन, चारित्र ये तीनों की प्राप्ति होती है। समत्वपूर्ण अवस्था, जिसमें (18 पापों) का त्याग और निर्वद्य योग का सेवन होता है। वह सामायिक चारित्र है। (गुणस्थानक 6-9)

(2) छेदोपस्थापनीय चारित्र - पूर्व पर्याय का त्याग कर, पाँच महाव्रत ग्रहण करना, छोटी दीक्षा से बड़ी दीक्षा देना। सिर्फ पहले व चोवीसवे तीर्थंकर के शासन में सामायिक चारित्र वाले को छेदोपस्थापनीय चारित्र दिया जाता है।

(3) परिहार विशुद्ध चारित्र - जिसमे परिहार तप से कर्म की विशुद्धि। 18 महिनों के लिए जिसे ग्रहण किया जाता है। यह चारित्र पांच भरत–ऐरावत में पहले व अंतिम तीर्थंकर के शासन में होता है। दूसरा और तिसरा चारित्र महाविदेह क्षेत्र में कभी भी नहीं होता।

(4) सुक्ष्म संपराय चारित्र - जिस चारित्र में सुक्ष्म लोभ रूप कषाय उदय में रहता है। श्रेणी में चढ़ते और उपशम श्रेणी से गिरते 10 वे गुणस्थानक पर ये चारित्र होता है।

(5) यथाख्यात चारित्र - पूर्ण वीतराग अवस्था (संपूर्ण राग-द्वेष रहित) अवस्था प्राप्त होती है। इस चारित्र के आचरण से जन्म-जरा-मरण रहित ऐसा मोक्षरूप स्थान प्राप्त होता है। (गुणस्थानक 11-14)

7. निर्जरा तत्त्व

आत्मा के प्रदेश से, बारह प्रकार के तप द्वारा, कुछ मात्रामें कर्म की निर्जरा होना, झरझरीत हो कर दूर होना, उसे निर्जरा कहते है। अथवा पूर्व में बंधे कर्मों का जो क्षय होता है, प्रमुखतः तप के द्वारा, कुछ प्रमाणमें कर्म को झराकर दूर करना, वह निर्जरा कहलाता है -उसके स्वरूप को निर्जरा तत्त्व कहते हैं।

निर्जरा दो प्रकार की होती है: **(1) द्रव्य निर्जरा:** कर्म पुद्गल आत्मा के प्रदेश से अलग हो जाते हैं, उसे द्रव्य निर्जरा कहते हैं। **(2) भाव निर्जरा:** आत्मा के शुद्ध परिणामों से जीन कर्मों की स्थिति स्वयं ही स्वयं से परिपक्व हो जाती है या बारह प्रकार के तप के द्वारा, कर्म परमाणु निष्प्रभ हो जाते हैं और छूट जाते हैं, तब आत्मा में जो परिणाम होते है, वह भाव निर्जरा कहलाती है।

निर्जरा के और भी दो भेद हैं: (1) अकाम निर्जरा: आत्मशुद्धि का लक्ष्य न होने पर, बिना सम्यग्दर्शन की उपस्थिति के, समझ के अभाव में, बाल तपस्वी या एकेन्द्रिय आदि में समकित की अनुपस्थिति में केवल कष्ट सहन करने से जो कर्म निर्जरा होती है, उसे अकाम निर्जरा कहते हैं। **(2) सकाम निर्जरा:** आत्मशुद्धि की भावना से, सम्यग्दर्शन की उपस्थिति में, तप के द्वारा, समझ और समभावपूर्वक कष्ट सहन कर के जो निर्जरा होती है, उसे सकाम निर्जरा कहते हैं।

बारह प्रकार के तप से कर्मों की निर्जरा होती है, जिनके दो भेद हैं: (1) बाह्य तप और (2) आभ्यंतर तप। इन दोनों के मिलाकर कुल 12 प्रकार के तप होते हैं।

बाह्य तप के लक्षण: (1) जिसमें भूख आदि बाहरी कष्ट होते हैं। (2) जिनका प्रभाव सीधे शरीर पर पड़ता है। (3) जो तप आभ्यंतर शुद्धि का कारण बनते हैं।

आभ्यंतर तप के लक्षण : (1) जिसमें भूख आदि बाह्य कष्ट गौण होते हैं। (2) जिनका प्रभाव सीधे आत्मा पर पड़ता है।

बाह्य तप शरीर की त्वचा के समान हैं और आभ्यंतर तप शरीर की धातुओं (रक्त, मांस आदि) के समान हैं। त्वचा शरीर की रक्षा करती है और धातु शरीर का कार्य संचालन करती है - दोनों परस्पर पूरक हैं। दोनोंका स्वयंका महतव है। दोनो द्वारा भाव के अनुसार निर्जरा होती है।

छह बाह्य तप

(1) अनशन: तीन या चार आहार का त्याग करना। **(2) उणोदरी:** न्यूनता करना - भोजन, जल, उपकरण, कषाय आदि का कम करना। **(3) वृत्तिसंक्षेप:** द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से वृत्तियों को सीमित करना एवं अभिग्रह, नियम आदि धारण करना। **(4) रसपरित्याग:** विगय, स्वादिष्ट रसों (घी, दूध, तेल, गुड़, शक्कर) का त्याग। **(5) कायक्लेश:** शरीर को तप, लोच आदि से कष्ट देना। **(6) प्रतिसंलीनता:** योग, कषाय, इन्द्रियों की अशुभ प्रवृत्तियों को रोकना।

छह आभ्यंतर तप

(1) प्रायश्चित्त: अपराधों की शुद्धि करना, दोषों को गुरु के समक्ष कपट रहित प्रकट कर आलोचना लेना। **(2) विनय:** आठ कर्मों का जिससे विनाश होता है, वह विनय है। देव, गुरु आदि की भक्ति करना **(3) वैयावच्च:** गुरु, तपस्वी, रोगी, नवदीक्षित को अन्न, जल, वस्त्र, औषध आदि लाके देकर सेवा करना। **(4) स्वाध्याय:** स्वाध्याय यानि- (1) श्रेष्ठ पठन-पाठन का अभ्यास (2) आत्मगुण के स्वरूप रूप अभ्यास (3) स्वयं का अभ्यास करना कि जीवन ऊँचा बन रहा है की नहीं। **स्वध्याय के 5 भेद:** (1) पढ़ना-पढ़ाना (2) शंका का गुरु से समाधान (3) जो सीखा है उसे फिरसे बारबार याद करना (4) जो समझ आया है उसका चिंतन (5) धर्म की कथा कहना और उपदेश देना **(5) ध्यान:** किसी एक विषय पर मन को स्थिर करना। चार ध्यानों में से आर्त, रौद्र दो अशुभ को छोड़ना और दो शुभ धर्म और शुक्ल ध्यानमें एकाग्र होना। **(6) व्युत्सर्ग:** शरीर, संप्रदाय और संसार के ममत्व का त्याग करना।

8. बंध तत्त्व

जब आत्मा के प्रदेशों में कर्म पुद्गल दूध-पानी की तरह या लोहा और अग्नि की तरह लोलिभूत (एकमेक) होकर मिलते हैं, उसे बंध कहते हैं। इस बंध के स्वरूप को बंध तत्त्व कहते हैं।

बंध तत्व के चार भेद होते हैं

(1) प्रकृति बंध: कर्म का स्वभाव व उसका परिणाम। **(2) स्थिति बंध:** कर्म की

स्थिति यानी कितने समय तक कर्म बंधा रहेगा। **(3) अनुभाग बंध:** कर्म के शुभ-अशुभ, तीव्र-मंद रस रूप परिणाम। **(4) प्रदेश बंध:** कर्म पुद्गलों के प्रदेश, कण।

लड्डु के दृष्टांत से चार प्रकार का बंध

(1) प्रकृति बंध: सूंठ आदि डालकर बनाया गया लड्डु वात रोग नाश करता है। जीरा आदि पदार्थ डालकर बनाया हुआ लड्डु पित्त रोगका नाश करता है। उसी तरह जिस द्रव्य के संयोग से जो लड्डु बना है उस द्रव्य के गुण अनुसार वात, पित्त, कफ आदि रोगो का नाश होता है, वह उसका स्वभाव है। उसी प्रकार कर्म का गुण उसके परिणाम तय करता है।

(2) स्थिति बंध: जैसे लड्डु 15 दिन, 1 महीना या अधिक समय तक टिक सकता है।

(3)अनुभाग बंध: जैसे लड्डु मीठा, तीखा, कड़वा, अलग-अलग रसों वाला होता है। एवं कम - ज्यादा रसो वाला होता है।

(4) प्रदेश बंध: जैसे लड्डु थोड़े द्रव्य से या अधिक कणों से या अधिकतर कणों से बना होता है, वैसे ही कर्म भी कम या अधिक कणों वाले होते है।

लड्डु के दृष्टांत से कर्म के उपर चार प्रकार के बंध

(1) प्रकृति बंध: जो कर्म बंधता है वह आत्मा के ज्ञान आदि गुणों को ढँक देगा, यह उसका स्वभाव होता है। इसे प्रकृति बंध कहते हैं।

(2) स्थिति बंध: जो कर्म बंधता है, वह न्यूनतम अंतर्मुहूर्त से लेकर अधिकतम 70 क्रोडाक्रोडी सागरोपम काल तक स्थित रह सकता है। जब किसी कर्म का स्वभाव बँधता है, उसी समय उस कर्म पुद्गल में यह मर्यादा भी निर्मित हो जाती है कि वह स्वभाव निश्चित काल तक आत्मा से अलग नहीं होगा, उस काल को ही स्थिति बँध कहा जाता है।

(3) अनुभाग बँध: किसी कर्म का शुभ, तीव्र या मंद विपाक होता है और किसी कर्म का अशुभ, तीव्र या मंद विपाक होता है। जैसे वेदनीय आदि कर्मों में किसी का अशुभ रस अल्प हो सकता है और किसी का अशुभ रस अधिक हो सकता है - ऐसे रस की तीव्रता-अतीव्रता के भेद को अनुभाग बँध कहते हैं।

(4) प्रदेश बँध: किसी कर्म पुद्गल के कण (प्रदेश) कम होते हैं तो किसी के अधिक होते हैं। इस परिमाण (मात्रा) को प्रदेश बँध कहा जाता है।

आठ कर्मों की प्रकृति

क्रम	कर्म का नाम	किसके समान?	कौन सा गुण रोका है? (प्रकृतिबंध)	प्रकृति	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति (स्थितिबंध)
1	ज्ञानावरणीय कर्म	आँखों पर बँधी पट्टी	अनंत ज्ञान गुण	5	अंतर्मुहूर्त	30 क्रो.को. सागर
2	दर्शनावरणीय कर्म	राजा के द्वारपाल	अनंत दर्शन गुण	9	अंतर्मुहूर्त	30 क्रो.को. सागर
3	वेदनीय कर्म	मधु से लिपटी तलवार	अनंत अव्याबाध आत्मिक सुख	2	दो समय	30 क्रो.को. सागर
4	मोहनीय कर्म	मदिरापान	वीतरागता	28	अंतर्मुहूर्त	70 क्रो.को. सागर
5	आयुष्य कर्म	बेड़ी समान	अक्षय स्थिति	4	अंतर्मुहूर्त	33 सागरोपम
6	नाम कर्म	चित्रकार समान	अमूर्त	93	आठ मुहूर्त	20 क्रो.को. सागर
7	गोत्र कर्म	कुंभार के चाक समान	अगुरुलघु	2	आठ मुहूर्त	20 क्रो.को. सागर
8	अंतराय कर्म	राजा के भंडारी समान	अनंतवीर्य	5	अंतर्मुहूर्त	30 क्रो.को. सागर
				सब मिल 148		

9. मोक्ष तत्त्व

समस्त आत्मा के प्रदेशों से, समस्त कर्मों का छूटना, समस्त बँधनों से मुक्त होना, समस्त कार्यों की सिद्धि प्राप्त होना, यही मोक्ष तत्त्व कहलाता है। अथवा आत्मप्रदेश से संपूर्ण रूप से सभी कर्मों का क्षय हो जाना, यही मोक्ष है।

पँद्रह भेद से सिद्ध होते हैं

(1) तीर्थ सिद्ध: तीर्थंकर, तीर्थ की स्थापना कर ले उसके बाद जो मोक्ष प्राप्त करते है वे, जैसे गौतमस्वामी आदि गणधर प्रमुख।

(2) अतीर्थ सिद्धः तीर्थंकर, तीर्थ की स्थापना करे उसके पहले या तीर्थ के विच्छेद बाद मोक्ष प्राप्त करते है वे, जैसे मरुदेवी माता आदि।

(3) तीर्थंकर सिद्धः जो तीर्थंकर पद को प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करते है वे, जैसे ऋषभदेव भगवान आदि अरिहंत भगवान।

(4) अतीर्थंकर सिद्धः जो तीर्थंकर पद को प्राप्त किए बिना, सामान्य केवली के रूप में मोक्ष को प्राप्त करते है वे।

(5) गृहस्थलिंग सिद्धः जो गृहस्थ वेश में रहते हुए मोक्ष को प्राप्त करते है वे, जैसे मरुदेवी माता।

(6) अन्यलिंग सिद्धः जो योगी, संन्यासी, तापस आदि वेश में मोक्ष को प्राप्त करते है वे, जैसे वल्कलचीरी आदि।

(7) स्वलिंग सिद्धः जो साधु वेश में रहते हुए मोक्ष को प्राप्त करते है वे, जैसे श्री जंबूस्वामी आदि मुनिराज।

(8) स्त्रीलिंग सिद्धः जो स्त्रीलिंग में मोक्ष को प्राप्त करते हैं वे, जैसे चंदनबाला आदि।

(9) पुरुषलिंग सिद्धः जो पुरुषलिंग में मोक्ष को प्राप्त करते है वे, जैसे गौतमादिक।

(10) नपुंसकलिंग सिद्धः जो नपुंसकलिंग में मोक्ष को प्राप्त करते है, जैसे गांगेय अणगार प्रमुख।

केवल समझने के लिएः इस पर कोई प्रश्न-नहीं पूछा जाएगा।

लोक में परमाणु से लेकर अभव्य जीवों से अनंतगुणा अधिक तथा सिद्ध जीवों से अनंत भाग कम प्रदेशों के जो स्कंध (समूह) बनते हैं, वे जीवों के लिए उपयोगी नहीं होते। इन्हें अग्राह्य वर्गणा कहा जाता है। इस में जब एक परमाणु जोड़ा जाता है, तब औदारिक शरीर की जघन्य (अत्याल्प) ग्रहण योग्य वर्गणा बनती है। जैसे-जैसे एक-एक परमाणु और जोड़े जाते हैं, उनसे बनने वाले स्कंधों की अनंत वर्गणाएँ औदारिक ग्रहण योग्य हो जाती हैं। फिर जब उत्तम औदारिक ग्रहण योग्य वर्गणा में एक परमाणु और जोड़ा जाता है, तो वैक्रिय शरीर की जघन्य अग्राह्य वर्गणा की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार जैसे-जैसे एक-एक परमाणु जोड़े जाते हैं, उनसे बनने वाले स्कंधों से वैक्रिय शरीर की उत्तम अग्राह्य वर्गणा बनती है। इसमें एक परमाणु और जोड़ने से वैक्रिय शरीर की जघन्य ग्रहण योग्य वर्गणा प्राप्त होती है।
इस प्रकारः (1) औदारिक (2) वैक्रिय (3) आहारक (4) तैजस (5) भाषा (6) श्वासोच्छ्वास (7) मन (8) कार्मण। कुल आठ प्रकार की अग्राह्य वर्गणाएँ और आठ प्रकार की ग्रहण योग्य वर्गणाएँ होती हैं। और इसके अतिरिक्त अनंत सारी वर्गणाएँ है।

(12) स्वयंबुद्ध सिद्ध: जो गुरु के उपदेश के बिना जातिस्मरण आदि ज्ञान से स्वयं प्रतिबोध पाकर मोक्ष को प्राप्त करते है वे, जैसे कपिल आदि।

(13) बुद्धबोधि सिद्ध: जो गुरु का उपदेश सुनकर, वैराग्य प्राप्त कर मोक्ष को प्राप्त करते है, वे।

(14) एक सिद्ध: एक ही समय में, एक जीव मोक्ष को प्राप्त करें वे।

(15) अनेक सिद्ध: एक ही समय में कई जीव मोक्ष को प्राप्त करें वे (2 से लेकर अधिकतम 108 तक), जैसे ऋषभदेव स्वामी। यह पंद्रह प्रकार सिद्ध के हैं। तीर्थ सिद्ध और अतीर्थ सिद्ध - इन दो भेदों में ही बाकी तेरह भेद समाविष्ट हो जाते हैं, फिर भी विस्तार से समझाने हेतु उन्हें पृथक रूप से वर्णित किया गया है।

चार कारणों से जीव मोक्ष को प्राप्त करता है

सम्यग् ज्ञान , सम्यग् दर्शन, सम्यग् चारित्र और तप से जीव मोक्ष में जाता है।

मोक्ष के नौ द्वार

सत्त, दव्व, खेत्त, फास, काल, भाग, भाव, चेव ।
अंतर, अप्प बहुत्त ए नौ मोक्ख दाराणी ॥

(1) सत्पदप्ररूपणाद्वार: मोक्षगति पूर्वकाल में थी, वर्तमान में है और भविष्य में भी रहेगी, इसका अस्तित्व है, यह आकाश-कुसुम की तरह अनस्तित्व नहीं है।

(2) द्रव्यद्वार: सिद्ध अनंत हैं। अभव्य जीवों से अनंतगुणा अधिक हैं। वनस्पति को छोड़ कर, 23 दंडकों से सिद्ध जीवों की संख्या अनंतगुणा अधिक है।

(3) क्षेत्रद्वार: यह सिद्धशिला के अनुसार है, जो 45 लाख योजन लंबी-चौड़ी है और उसकी त्रिगुणी से अधिक परिधि है। वहाँ से एक योजन ऊपर के अंतिम गाउ के छट्ठे भाग (333 धनुष और 32 अंगुल) की सीमा में सिद्ध रहते हैं।

(4) स्पर्शनाद्वार: सिद्ध क्षेत्र से कुछ अधिक सिद्धों की स्पर्शना होती है।

(5) कालद्वार: एक सिद्ध की अपेक्षा सादि अनंत है और सभी सिद्धों की अपेक्षा वे अनादि अनंत है।

(6) भागद्वार: सिद्ध जीव सभी जीवों के अनंत वे भाग हैं; लोक के असंख्यात वे भाग हैं।

(7) भावद्वार: सिद्धों में क्षायिक भाव होता है। वे केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिक

सम्यकत्व और पारिणामिक भाव के धारी होते हैं, वही जीवत्व है।

(8) अंतरद्वार: एक बार जो सिद्ध हो गए, वे संसार में फिर नहीं आते। सिद्ध क्षेत्र में अनंत सिद्ध हैं, जहाँ एक सिद्ध है, वहाँ अनंत-सिद्ध है और अनंत सिद्ध है वहाँ एक सिद्ध है। इसलिए दो सिद्धों में कोई अंतर नहीं।

(9) अल्पबहुत्वद्वार: सबसे कम नपुंसक सिद्ध, उनसे अधिक संख्या में स्त्री सिद्ध और उनसे भी अधिक संख्या में पुरुष सिद्ध होते हैं। एक समय में 10 नपुंसक, 20 स्त्रियाँ और 108 पुरुष मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

19 बोल का धारक ही मोक्ष प्राप्त करता है

(1) त्रस (2) बादर (3) पर्याप्त (4) संज्ञी (5) मनुष्यगति (6) वज्रऋषभनाराच संघयण (7) भव्य सिद्धिक (8) चरम शरीरी (9) क्षायिक समकित (10) पंडितवीर्य (11) अप्रमादी (12) शुक्लध्यान (13) अवेदी (14) अकषायी (15) यथाख्यातचारित्र (16) परमशुक्ललेशी (17) केवलज्ञान (18) केवलदर्शन, (19) स्नातक।

जघन्य रूप से जिसकी अवगाहना दो हाथ और उत्कृष्ट रूप से जिसकी अवगाहना 500 धनुष तक है; जघन्य रूप से जिसकी आयु 9 वर्ष की और उत्कृष्ट रूप से पूर्वक्रोड वर्ष की है; और जो कर्मभूमि का मनुष्य है, वही मोक्ष में जाता है।

॥ इस प्रकार नव तत्त्व संपूर्ण हुए ॥

सम्यग्दृष्टि जीवों के लिए उपर्युक्त नव तत्त्वों को जानना योग्य है। जीव और अजीव, ये दो तत्त्व **(ज्ञेय)** अर्थात् जानने योग्य हैं। पुण्य, संवर, निर्जरा और मोक्ष, ये चार तत्त्व **(उपादेय)** अर्थात् ग्रहण करने योग्य हैं। पाप, आश्रव, और बंध, ये तीन तत्त्व **(हेय)** अर्थात् सर्वथा त्यागने योग्य हैं।

नव तत्त्वों के रूपी-अरूपी भेदों की संख्या तथा हेय, ज्ञेय और उपादेय के अनुसार उनका वर्गीकरण नीचे अनुसार है:

जिसमें वर्ण, गंध, रस और स्पर्श होते हैं, वे रूपी तत्त्व कहलाते हैं। जिसमें ये चारों गुण नहीं होते, वे **अरूपी** तत्त्व कहलाते हैं।

नव तत्त्वों के रूपी-अरूपी भेद

क्रम	तत्व	रूपी भेद	अरूपी भेद	हेय, ज्ञेय, उपादेय
1	जीव तत्त्व	14	सिद्ध	ज्ञेय
2	अजीव तत्त्व	4	10	ज्ञेय
3	पुण्य तत्त्व	42	0	उपादेय, हेय
4	पाप तत्त्व	82	0	हेय
5	आश्रव तत्त्व	42	0	हेय
6	संवर तत्त्व	0	57	उपादेय
7	निर्जरा तत्त्व	0	12	उपादेय
8	बंध तत्त्व	4	0	हेय
9	मोक्ष तत्त्व	0	9	उपादेय

व्ययवहारिक जीवन में नव तत्त्वों को जानकर क्या करेंगे?

जीव तत्त्व: 1. यह श्रद्धा करना कि आत्मा है, अनादिकाल से है और अनंतकाल तक रहेगी। 2. जीव के विभिन्न स्वरूपों को जानकर प्रत्येक को अपने आत्मा के समान मानते हुए किसी को भी दुख, कष्ट या पीड़ा न देना। 3. यह जानकर कि ज्ञान और दर्शन मेरा स्वभाव है, समता धर्म की आराधना करना। 4. जीव के 563 भेद को जानकर समझना कि मेरा आत्मा उनमें परिभ्रमण कर रहा है और उस परिभ्रमण से मुक्त होने का प्रयत्न करेंगे।

अजीव तत्त्व: 1. यह श्रद्धा और समझ रखना कि अजीव पदार्थ जड़ है और जीव से भिन्न है। 2. जड़ वस्तुओं में सुख या शांति देने की कोई प्रकृत्ति नहीं है। 3. अरूपी जड़ पदार्थों का ज्ञान कर भगवान के केवलज्ञान पर दृढ़ श्रद्धा करना। 4. यह श्रद्धा करना कि परिवर्तन पुद्गल का स्वभाव है और इस कारण पुद्गल की आसक्ति को घटाना।

पुण्य तत्त्व: 1. पुण्य के उदय तक ही अच्छे संयोग और अनुकूलताएँ टिकती हैं, इसलिए इच्छित संयोगों को बनाए रखने के लिए आर्तध्यान या रौद्रध्यान न करें। 2. पुण्य बाँधने की वृत्ति से धर्म की आराधना न करें। 3. यह जानकर कि संसार का समस्त प्रवाह पुण्य के उदय से चलता है लेकिन अंततः

पुण्य भी नष्ट हो जाता है, पुण्य को नहीं, पुरुषार्थ को केन्द्र बनाना चाहिए। जीवन में धर्म को प्राथमिकता देना, पुण्य के उदय को नहीं।

पाप तत्त्व: 1. दुःख, प्रतिकूलता और अनिष्ट संयोग अपने पापकर्म के उदय से मिलते हैं, इसलिए आर्तध्यान में न जाकर समता भाव बनाए रखना। 2. पाप का भय रखकर आत्मा को हल्का (शुद्ध) बनाने के लिए 18 पापों का त्याग करना। 3. जानना कि दुख का मूल पाप है और पाप का मूल हिंसा है। हिंसा से अशांति बँधती है, इसलिए पाप का स्वरूप जानकर उसका सर्वथा त्याग करना। 4. पुण्य करना सरल है लेकिन पाप छोड़ना कठिन, यह जानकर पाप का त्याग करना और समभाव से दुख का स्वीकार करने योग्य जीवन बनाना।

आश्रव तत्त्व: 1. यह श्रद्धा करना कि मिथ्यात्व आदि भावों से आत्मा में कर्मों का प्रवाह (आगमन) होता है। २. कर्म बंधन के कारणभूत बनने वाली 25 क्रियाओं को जानकर उनसे बचने के लिए सतर्क रहना। ३. यदि किसी विवशता से आश्रवकारी कार्य करना पडे तो प्रायश्चित्त और प्रतिक्रमण करना।

संवर तत्त्व: 1. अशुभ कर्मों के आगमन को रोकने के लिए संवर के विभिन्न अनुष्ठान को जानकर उसकी आराधना करना। 2. व्रत और नियमों को धारण करने में उत्साह दिखाना। 3. पापभीरुता गुण को विकसित करना, संसारिक कार्यों की सीमा निर्धारित कर या उन्हें घटाकर, व्रत धारण कर, संवर कर, आते हुए कर्मोंको रोकना। 4. पच्चक्खाण (व्रत संकल्प) द्वारा पाप का त्याग करके संवर की आराधना के लिए दृढ़ श्रद्धावान श्रावक या साधु धर्म की आराधना करनी चाहिए। 5. यह जानकर कि केवल मनुष्य भव में ही संवर की पूर्ण आराधना हो सकती है, दुर्लभ मानव जीवन को सार्थक बनाने हेतु अप्रमादी बनकर सम्यक् पराक्रम करना।

निर्जरा तत्त्व: 1. तप की समझ प्राप्त कर, अपनी शक्ति के अनुसार तप का आचरण करना। 2. धर्म कार्य में अपनी ऊर्जा (वीर्य) को संचित करके रखना, व्यर्थ न गँवाना। 3. तप त्याग के द्वारा संसारिक सुखों की इच्छा का त्याग करना चाहिए।

बंध तत्त्व: 1. कर्म बंधन के प्रकारों को जानकर उन्हें रोकने और मंद रस (कम प्रभाव) के लिए पुरुषार्थ करना। 2. जो कर्म बंध गए हैं, वे अपनी स्थिति से अधिक समय तक नहीं टिक सकते, यह समझ प्राप्त कर, अनुकूलता और प्रतिकूलता को समभाव से सहन करने हेतु जागृत बनना। 3. यदि अशुभ कर्म बंध जाएँ तो उनको तुरंत निष्फल होने हेतु पश्चात्ताप करना। 4. क्रोध और मान को जीतने के लिए "कम खाना, गम खाना, नम जाना" सूत्र को अपनाना। माया और लोभ को जीतने के लिए "सरल और संतोषी हृदय में ही धर्म टिकता है" इस सूत्र को अपनाना।

मोक्ष तत्त्व: 1. सम्यग् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यग् चारित्र और सम्यग् तप की ही आराधना का लक्ष्य दृढ़ बनाना। 2. जैन धर्म में दृढ़ श्रद्धा करना। 3. केवल मोक्ष को ही लक्ष्य बनाकर धर्म की आराधना करना। 4. मोक्ष का यथार्थ स्वरूप समझना।

इस प्रकार नौ तत्त्वों की यथार्थ श्रद्धा द्वारा समकित मोहनीय कर्म को तोड़ा जा सकता है, देव, गुरु और धर्म के सच्चे स्वरूप को जाना जा सकता है और सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो सकती है। फिर क्रोध, मान, माया और लोभ रूपी चार कषायों को उपशम या क्षय करके चारित्र मोहनीय कर्म को तोड़कर यथार्थ मोक्ष मार्ग की आराधना हेतु चारित्र को अंगीकार किया जा सकता है। जिससे मोक्ष की प्राप्ति संभव है।

इसलिए जिस आत्मा में योग्य धर्म आचरण की भावना हो, उसे चाहिए कि: मोक्ष को लक्ष्य बनाकर जीव और जड़ स्वभावी शरीर को भिन्न करने, पुण्य-पाप रूप आश्रव और बँध को रोक कर संवर में स्थिर होकर कर्म निर्जरा की साधना में प्रयत्नशील बने।

अपेक्षित प्रश्न:

1. नौ तत्त्वों की यथार्थ श्रद्धा से क्या लाभ होता है?
2. सम्यग्दर्शन क्या होता है?
3. नौ तत्त्वों को जानकर व्यावहारिक जीवन में आप क्या परिवर्तन करेंगे?
4. जीव को कौन-सा लक्ष्य अपनाना चाहिए?

3. 32 आगम (सूत्रों) का परिचय

सूत्रः आगमः जैन धर्म का मूल आधार 32 आगम हैं। “आगम” - आत्मा की ‘गम’ (समझ) देते है। इनके माध्यम से जीव, अजीव आदि छह द्रव्यों का यथार्थ ज्ञान होता है।

इन 32 आगमों में से11अंग सूत्र तीर्थंकर भगवान की प्रत्यक्ष वाणी को गणधरों द्वारा संग्रहित करके गूँथा गया है। इन्हें ही द्वादशांगी कहा जाता है अर्थात् बारह सूत्रों का समूह। वर्तमान में हमारे पास केवल 11 अंगसूत्र उपलब्ध हैं। बारहवाँ सूत्र, जिसे दृष्टिवाद कहते हैं, जो लुप्त (विच्छिन्न) हो चुका है। यह इसलिए लुप्त हुआ, क्योंकि यह सूत्र तीर्थंकर की दो पीढ़ियों (पाट) तक ही टिकता है। बाद में धीरे-धीरे लुप्त होता जाता है। दृष्टिवाद अंगसूत्र में ही 14 पूर्व का ज्ञान समाहित रहता है।

१2 उपांग सूत्र आदि अन्य आगम हैं, जो 10 पूर्व या उससे अधिक श्रुतज्ञान के धारक आचार्यों द्वारा रचित होते हैं। यह आगम सूत्र दो प्रमुख वर्गों में विभाजित हैं: (1) आवश्यक सूत्र और (2) आवश्यक व्यतिरिक्त यह ‘आवश्यक व्यतिरिक्त’ सूत्रों के दो भेद हैं: (1) कालिक सूत्र (2) उत्कालिक सूत्र।

इस प्रकार, आगम सूत्रों के अंतर्गत आते हैं: आवश्यक सूत्र एवं अन्य 31 आगम जिसमें 11 अंग सूत्र, 12 उपांग सूत्र, 4 मूल सूत्र, 4 छेद सूत्र। इन में: 23 कालिक सूत्र और 8 उत्कालिक सूत्र है।

महाविदेह क्षेत्र की दृष्टि से 12 अंग सूत्र ध्रुव (स्थायी) आगम माने जाते हैं। अन्य सूत्र चल माने जाते हैं। याने की हमेंशा ही रहे, ऐसा नहीं है।

आगमों की प्रमुख परिभाषाएँ:

कालिक सूत्रः वे सूत्र जिसका स्वाध्याय रात्रि के पहले और चौथे प्रहर तथा दिन के पहले और चौथे प्रहर, ऐसे चार प्रहर असज्झाय समयको छोड़कर किया जाता है, उन्हें कालिक सूत्र कहा जाता है।

उत्कालिक सूत्रः वे सूत्र जिसका स्वाध्याय आठों प्रहर असज्जाय समय टालकर किया जा सकता है, वे उत्कालिक सूत्र कहलाते हैं।

अंगसूत्रः वे सभी श्रुतज्ञान के सूत्र जो 14 पूर्वी गणधरों द्वारा रचित हैं, जो मूल और प्रधान माने जाते हैं। इनका अर्थ और क्रम सर्व क्षेत्र और सर्व काल में समान रहता है, इन्हें अंग सूत्र कहते हैं। इनकी कुल संख्या 12, परंतु वर्तमान में केवल 11 अंग सूत्र उपलब्ध हैं।

उपांगसूत्रः जो ज. 10 पूर्व उ. 14 पूर्व के ज्ञानि स्थविरों द्वारा रचित होते हैं

और अंगसूत्र में बताए गए अर्थों का स्पष्ट बोध कराते हैं, उन्हें उपांगसूत्र कहते हैं। जिसकी संख्या वर्तमान में 12 है।

मूल सूत्र: जो साधु के जीवन में मूलभूत मार्गदर्शन प्रदान करते हैं और जिनका अध्ययन साधु के लिए सर्वप्रथम आवश्यक होता है, उन्हें मूलसूत्र कहते हैं। जिसकी संख्या 4 है।

छेद सूत्र: जो सूत्र नौवे पूर्व से अलग किए गए हैं और छेदोप स्थापनीय चारित्र के अनुरूप जिनमें प्रायश्चित्त के निर्देश दिए गए हैं, उन्हें छेद सूत्र कहा जाता है। जिसकी संख्या 4 है।

आवश्यक सूत्र: जो चतुर्विध संघ (साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका) के लिए प्रतिदिन अनिवार्य रूप से करने योग्य हैं, वह आवश्यक सूत्र हैं।

इन 32 सूत्रों का स्वाध्याय कब करना चाहिए, इसका विवरण इसी पुस्तक के तीसरे श्रमण सूत्र के प्रश्नोत्तर भाग में दिया गया है। आवश्यक सूत्र कभी भी बोला जा सकता हैं। यहाँ 32 सूत्रों के नाम, उनका कालिक/उत्कालिक होना आदि की संक्षिप्त जानकारी दी गई है।

11 अंग सूत्रों के रचयिता श्री सुधर्मा स्वामी हैं, और ये सभी कालिक सूत्र हैं।

जैन आगम सूत्रों का वर्गीकरण

11 अंग सूत्र

क्रम	सूत्र का नाम	कौन से विषयों का वर्णन है?
1	श्री आचारांग सूत्र	साधु के आचार तथा भगवान महावीर के जीवन चरित्र का वर्णन
2	श्री सूयगडांग सूत्र	353 पाखंडी धर्मों के खंडन का वर्णन और छह दर्शन(सिद्धांत) का रहस्य
3	श्री ठाणांग सूत्र	1 बोल, 2 बोल आदि क्रम से 10 बोल तक विभाजित विविध विषयों का वर्णन
4	श्री समवायांग सूत्र	1, 2, 3 से क्रोड बोलों का वर्णन तथा 63 शलाकापुरुषों का वर्णन, द्वादशांगी का वर्णन
5	श्री भगवती सूत्र	36,000 प्रश्नोत्तर हैं। गौशालक, जमाली, जयंतिश्राविका आदि का वर्णन। उपलब्ध आगम में सबसे बडा आगम है।
6	श्री ज्ञाताधर्मकथा सूत्र	मेघकुमार, थावच्चापुत्र, मल्लिनाथ भगवान, द्रौपदी, धर्मरूचिअणगार आदि धर्मकथाओं का वर्णन
7	श्री उपासकदशांग सूत्र	आनंद, कामदेव आदि 10 श्रावकों का जीवन वर्णन
8	श्री अंतगड सूत्र	गजसुकुमाल, अर्जुनमाली, श्रेणिक की रानीया आदि तथा विभिन्न तप का वर्णन
9	श्री अनुत्तरोववाई सूत्र	श्रेणिक के 23 पुत्रों, कांकदि के धन्ना आदि अनुत्तर विमान में उत्पन्न होनेवाले 33 जीवों का वर्णन

10	श्री प्रश्नव्याकरण सूत्र	पाँच आश्रव और पाँच संवर का वर्णन
11	श्री विपाक सूत्र	पुण्य और पाप के विपाक (फल) सुख-दुःखरुप है, यह समझाती सुबाहुकुमार, कालसौरिक कसाई आदि की कहाँनिया है।

१2 उपांगसूत्र

12	श्री उववाई सूत्र	उत्कालिक	12 तप और 4 ध्यान इत्यादि विषय का वर्णन है।
13	श्रीरायपसेणीय सूत्र	उत्कालिक	परदेशी राजा और केशीकुमार श्रमण का संवाद। सूर्याभदेव, परदेशी राजा और द्रढ प्रतिज्ञ केवली (एक जीव का) अधिकार है।
14	श्रीजीवाभिगम सूत्र	उत्कालिक	जीव, अजीव के भेद, प्रभेद, रूपी और अरुपी जीवों का वर्णन है।
15	श्री प्रज्ञापना सूत्र	उत्कालिक	जीव, अजीव का विशेष निर्देश; 24 दंडक के जीवों की स्थिति, विरह, गतागत आदि का विवेचन है।
16	श्री जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र	कालिक	जंबूद्वीप, छह आरे, भरत चक्रवर्ती आदि का वर्णन है।
17	श्री चंद्र प्रज्ञप्ति सूत्र	कालिक	चंद्र विमान, नक्षत्र, राहु आदि का ज्योतिषीय वर्णन
18	श्री सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र	उत्कालिक	समपृथ्वी से सूर्य आदि विमान कितनी उंचाई पर है, सूर्यविमान, पर्वराहु, मंडल क्षेत्र आदि का वर्णन
19	श्री निरयावलिका सूत्र	कालिक	कुणिक राजा के अपने भाई हल, विहल के साथ तथा चेडा राजा के साथ रथमुसल कंटक संग्राम का तथा युद्ध के परिणाम से जीव नरक और तिर्यंच गति में उत्पन्न होते है, उसका वर्णन
20	श्री कप्पवडंसिया सूत्र	कालिक	कालकुमार आदि 10 भाईओं के 10 बेटे और उनके तप, संयम का वर्णन
21	श्री पुप्फिया सूत्र	कालिक	महावीर के दर्शन हेतु पधारे चंद्र-सूर्य देव, सोमील और पारसनाथ संवाद तथा बहुपुत्रीकादेवी आदि का वर्णन
22	श्री पुष्फचूलिया सूत्र	कालिक	भगवान पार्श्वनाथ के शासन की 10 साध्वी बीना आलोचना किये काल करके देवी के रूप में उत्पन्न हुई उसका वर्णन
23	श्री वह्निदशा सूत्र	कालिक	22वें तीर्थंकर के शासन में हुए नव वे बलदेव बलभद्र के 12 पुत्रों का वर्णन निषधकुमार आदि 12 भाई नेमनाथ भगवान के पास दीक्षा ग्रहण करके एकावतारी बने उसका वर्णन

4 मूल सूत्रों कें नाम

24	श्री दशवैकालिक सूत्र	उत्कालिक	उसके चोथे अध्ययन के पाठ से वडी दीक्षा दी जाती है। साधु के आचार, भाषा, विनय आदि का वर्णन

25	श्री उत्तराध्ययन सूत्र	कालिक	भगवान महावीर की अंतिम देशना है। नमिराजर्षि, हरिकेशी मुनि, अनाथि मुनि आदि की कथाएँ तथा समिति, गुप्ति, सम्यक् पराक्रम के बोल, 1 से 33 बोल वगैरे का वर्णन है।
26	श्री नंदी सूत्र	उत्कालिक	पाँच ज्ञान का विस्तार, कालिक व उत्कालिक सूत्रों के नाम वगैरे का उल्लेख
27	श्री अनुयोगद्वार सूत्र	उत्कालिक	चार अनुयोग का विवरण

४ छेद सूत्र (सभी कालिक)

28	श्री बृहत्कल्प सूत्र	साधु-साध्वी के आचरण, विधि, कल्प, निषेध कल्प का वर्णन
29	श्री व्यवहार सूत्र	भगवान की आज्ञा में विशेषरूप से कोई दोष लगे हो तो उसका शुद्धिकरण करने की विधि
30	श्री निशीथ सूत्र	साधु-साध्वी के प्रायश्चित्त संबंधित वर्णन
31	श्री दशाश्रुतस्कंध सूत्र	असमाधि स्थान, सबल दोष, आशातना, आचार्य की संपदा,पडिमा आदि का वर्णन
32	श्री आवश्यक सूत्र	नोकालिक नोउत्कालिक सामायिक आदि 6 अध्ययन (आवश्यक)

आवश्यक सूत्र चतुर्विध संघ (साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका) के लिए नित्य करना आवश्यक है। यह सूत्र सभी प्रकार के अस्वाध्याय (असज्झाय) को पार कर चुका है अर्थात् इस पर कोई भी असज्झाय (स्वाध्याय-वर्जित समय) लागू नहीं होती। व्यवहार में इसे प्रतिक्रमण सूत्र के नाम से जाना जाता है।

असज्झाय किसे नहीं लगती?

असज्झाय केवल ऊपर बताए गए श्री आवश्यक सूत्र को छोड़कर, बाकी 31 आगम सूत्रों के **मूल पाठ** पर लागू होती है, इनके अर्थ पर नहीं। इन 32 आगम सूत्रों के अलावा अन्य कोई भी ग्रंथ, साहित्य, कविताएँ, पाठ, श्लोक, या किसी भी भाषा (जैसे, गुजराती, हिंदी आदि) में किए गए अनुवादों पर **कोई असज्झाय लागू नहीं होती।**

(असज्झाय का विशेष विवरण जानने हेतु देखें, श्रृंखला 8 में ’32 असज्झायों की सूची’)

4. कथा विभाग

1. मुनि मेघकुमार

(श्री ज्ञाताधर्म कथा सूत्र)

मगध नामक विशाल राज्य की राजधानी राजगृही नगरी के पराक्रमी और धर्मनिष्ठ राजा श्रेणिक थे। उनकी धर्मपरायण और सुशील सबसे छोटी रानी का नाम था धारिणी। बुद्धिशाली और धर्मवीर अभयकुमार महामंत्री का पद सुशोभित कर रहे थे।

मेघकुमार, धारिणी रानी और राजा श्रेणिक के सबसे छोटे पुत्र थे। वे सबके लाड़ले और अत्यंत प्रिय थे। जब वे माता के गर्भ में आए, उस समय धारिणी रानी को मेघ (बादल) का आनंद लेने की इच्छा हुई, इसलिए उनका नाम 'मेघकुमार' रखा गया।

योग्य विद्या का अध्ययन पूर्ण करने के पश्चात्, युवावस्था में उनका विवाह आठ सुंदर एवं गुणवान कन्याओं के साथ हुआ। वे उनके साथ स्वर्ग के समान सुख भुगतते हुए आनंद-प्रमोद में जीवन व्यतीत करने लगे।

एक बार महावीर प्रभु विचरण करते-करते राजगृही नगरी के गुणशीलक उद्यान में पधारें। उनकी देशना को सुनने के लिए उत्साहित नगरजन और मेघकुमार भी पहुँचे। प्रभु ने "श्रुतधर्म और चारित्रधर्म का स्वरूप बताया। किस प्रकार से जीव कर्म से बँधता है? किस प्रकार कर्म से मुक्त होता है? और किस तरह जीव सुख-दुख को प्राप्त करता है?" ऐसा धीर, गंभीर वाणी में मंगलमय उपदेश दिया। उनकी अमृतमय वाणी से श्रोता और मेघकुमार भावविभोर हो गए। मेघकुमार में वैराग्य जागृत हुआ और उसी क्षण उन्होंने दीक्षा लेने का निर्णय लिया। उन्होंने प्रभु के पास जाकर अपने अंतर की इच्छा प्रकट की। प्रभु ने मेघकुमार से कहा: "हे मेघ! शुभ कार्य में विलंब मत करो।"

मेघकुमार राजमहल लौटे और अपने माता-पिता से दीक्षा लेने की अनुमति माँगी। धारिणी माता ने, जो अपने इकलौते पुत्र को अत्यंत स्नेह करती थीं, मेघ से संसार में रहने की बहुत विनंती की। माता-पिता दोनों ने मिलकर मेघकुमार को बहुत समझाया, मुनि जीवन की कठिनाइयों को बताया परंतु मेघ अपनी भावना में दृढ़

रहे। अंततः, उनकी दृढ़ता और वैराग्यभावना के समक्ष झुककर माता-पिता ने मेघकुमार का एक दिन के लिए राज्याभिषेक करवा दिया और फिर भारी हृदय से दीक्षा लेने की अनुमति दी। उसी दिन उनका दीक्षा महोत्सव अत्यंत उत्साह और ठाठ-बाट के साथ संपन्न किया गया।

महावीर प्रभु ने मेघकुमार को स्वयं दीक्षा प्रदान की और मुनिधर्म की मर्यादाएँ समझाईं। उन्होंने कहा: "मेघ! अब से तुझे नीचे देखकर चलना होगा, निर्जीव भूमि पर खड़े रहना होगा, भूमि देखकर बैठना होगा, शरीर की प्रमार्जना कर शयन करना होगा, निर्दोष आहार करना होगा, हितकारी-मितकारी और मधुर वाणी बोलनी होगी। एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक सभी जीवों की रक्षा के लिए सदा सजग रहना, प्रमाद नहीं करना।" इस प्रकार मेघकुमार अब महावीर प्रभु के शिष्य और संयमजीवन के यात्री बन गए।

दीक्षा के बाद की यह उनकी पहली ही रात्रि थी। मुलायम, आरामदायक बिस्तरों और रजाइयों को छोड़कर आज उन्हें भूमि पर संस्तारक (बिछाना) बिछाकर शयन करना था। वे सबसे छोटे थे, इसलिए उनका शयन-स्थान द्वार के पास बना।

रात्रि का समय हुआ। अन्य मुनिजन स्वाध्याय, परियट्टना, चिंतन तथा लघुशंका आदि क्रियाओं हेतु द्वार के पास से अंदर-बाहर आ-जा रहे थे। उन मुनियों में से किसी का हाथ उन्हें छू जाता, किसी का पैर उनके सिर से टकराता, किसी का पैर पेट से लग जाता, किसी के पैरों की धूल उन पर पड़ती। इन सभी कारणों से उन्हें पूरी रात नींद नहीं आई।

पूरी रात जागरण के पश्चात् उनके मन में विचार उत्पन्न हुआ, "मैं श्रेणिक राजा का पुत्र था, तब यही साधुजन मेरा कितना सत्कार करते थे! और आज मेरा यह कैसा घोर अपमान हो रहा है? मानो मैं कोई पत्थर हूँ, सब मुझे ठोकर मारते जा रहे हैं। पैरों की धूल से मेरी बिछोना गंदा हो रहा है! राजकुमार होकर भी आज भूमि-शयन कर रहा हूँ, यह तो सहनीय है, परंतु यह अपमान, यह तिरस्कार, यह विटंबना, मैं इसे सहन नहीं कर पाऊँगा! सुबह होते ही प्रभु से कह दूँगा: "प्रभु! मैं इस संयमी जीवन से तंग आ गया हूँ। मैं फिर से गृहस्थ बनना चाहता हूँ।" आर्तध्यान और पीड़ा से ग्रस्त होकर, वह रात्रि मेघमुनि ने मानो नरक की यातना की भाँति व्यतीत की।

प्रभात होते ही मेघमुनि प्रभु के पास पहुँचे, वंदन-नमस्कार किया। प्रभु बोले: "हे मेघ! मैं जानता हूँ, तुझे पूरी रात मुनियों के आवागमन के कारण नींद नहीं आई और इसी से तेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ, जब मैं श्रेणिक राजा का पुत्र था, तब ये ही साधुजन मेरा कितना सत्कार करते थे! और आज मेरा यह कैसा घोर अपमान हो रहा है? ऐसे अनेक विचारों से तू इतना व्याकुल हो गया कि तूने संयम छोड़ संसार में लौटने का निर्णय कर लिया! और अब मेरी आज्ञा लेने आया है। सही कहा न, मेघ?" मेघमुनि ने कहा: "हाँ प्रभु! यह सब सत्य है।"

प्रभु ने कहा: "आज से तीसरे भव में तू वैताढ्य पर्वत की तलहटी में 'सुमेरुप्रभ' नामक एक विशालकाय हाथी था। तू एक हज़ार हाथियों का नायक – यूथपति था। जिस जंगल में तेरा वास था, वहाँ एक बार भीषण दावानल लगा। तेरे साथी हाथी और अन्य प्राणी जान बचाकर इधर-उधर भागने लगे। तू आग की लपटों में घिर गया। असहनीय जलन और पानी की तीव्र प्यास से व्याकुल होकर तू एक सरोवर में बिना कुछ सोचे कूद पड़ा। लेकिन तू उसके कीचड़ में फँस गया। जैसे-जैसे बाहर निकलने का प्रयास करता, वैसे-वैसे और गहराई में धँसता गया। उसी अवस्था में तेरा एक पुराना शत्रु हाथी आया और उसने अपने दंत-शूल से प्रहार कर तुझे घायल कर दिया। तू भीषण पीड़ा और कष्ट को सात दिनों तक सहता रहा। अंततः आर्तध्यान में तेरी मृत्यु हुई।"

मृत्यु के बाद तू विंध्याचल के पास एक वन में 'मेरुप्रभ' नामक हाथी बना। वहाँ भी तू 700 हाथियों का युथपति बना। उस वन में भी एक बार दावानल भड़का। जब तुने अग्नि देखी, तो तेरे मन में यह विचार आया कि ऐसी अग्नि तू पहले भी देख चुका है। उसी समय तुझे जातिस्मरण (पूर्वभव का स्मरण) ज्ञान हुआ।

भविष्य में ऐसी अग्नि से बचने हेतु, तूने अपने साथियों के सहयोग से जंगल के वृक्षों को उखाड़कर दूर फेंकते हुए एक विस्तृत सुरक्षित मंडल, (आश्रय स्थल) मैदान बनाया।

गर्मी के मौसम में एक बार फिर जंगल में वृक्षों के आपसी घर्षण से दावानल भड़क उठा। सभी वन्य प्राणी भयभीत हो उठें। तब वे सब तेरे द्वारा बनाए गए मंडल में शरण लेने के लिए आ गए। वे शत्रुता भूलकर एक साथ बैठ गए। वह मंडल प्राणियों से भर गया और तू भी वहाँ शरीर समेटकर एक स्थान पर खड़ा रहा। थोड़ी

देर बाद जब तूने शरीर में खुजली अनुभव की, तो तूने एक पैर ऊपर उठाया और जब वह पैर नीचे रखने लगा, तभी देखा कि एक खरगोश नीचे बैठा हुआ था। तूने सोचा, "यदि मैंने पैर नीचे रखा, तो यह बेचारा कुचल कर मर जाएगा।" ऐसी जीव अनुकंपा और समता (सभी जीव छोटे-बड़े समान हैं) के उच्च भाव से तूने पैर नीचे नहीं रखा। इस जीवदया और करुणा के कारण तूने मनुष्य के भव का आयुष्य बाँधा। ढाई दिन बाद, जब वह दावानल शांत हुआ, तब सभी प्राणी एक-एक कर अपने स्थान को लौटने लगे। वह खरगोश भी वहाँ से चला गया। ढाई दिन तक भूख, प्यास और थकावट, लगातार तीन पैरों पर खड़ा होने से तू अत्यंत निर्बल और शक्तिहीन हो गया था। तूने चलने का प्रयास किया, परंतु वहीं भूमि पर गिर पड़ा। तू भूख, प्यास, बुखार और पीड़ा से ग्रसित रहा। तेरे शरीर को अत्यंत वेदना हो रही थी, परंतु मन में पूर्ण शांति थी। एक प्राणी पर दया करके उसे अभयदान दिया, उस करुणा से तेरे आत्मा में गहरा संतोष और आनंद था। तीन दिन के अंत में तूने देह का त्याग किया। वहाँ से मृत्यु को पा कर तू मेघकुमार बना।

हे मेघ! तीर्यंच भव में जीवदया का पालन करने से तुझे मानव जन्म मिला और युवावस्था में ही तुझ में वैराग्य उत्पन्न हुआ। घर, संसार और राज्यसुख का त्याग कर तू साधु बना। आज की रात में तुझे जो कष्ट मिला, जो दुःख हुआ, उसकी तुलना पिछले भव में सहन किए गए कष्टों से कर! साधुओं के चरणों की धूल, उनके पैरों या हाथों का स्पर्श क्या इतना कठोर था कि तू एक रात भी सहन नहीं कर सका? याद कर, मेघ! उस स्मृति को संस्कारित कर।"

श्री महावीर प्रभु के मुख से अपने पूर्वजन्म का वृत्तांत सुनकर मेघमुनि को जातिस्मरणज्ञान प्राप्त हुआ। उनके अंतरचक्षु द्वारा पूर्वभव की घटनाएँ उन्हें सम्यक् रूप से ज्ञात हुई। मेघमुनि का मुख आनंद के आँसुओं से भीग गया। उन्होंने प्रभु को वंदन-नमस्कार कर कहा: "हे प्रभु! आज से मेरी इन दोनों आँखों के अलावा मेरा पूरा शरीर साधुओं की सेवा के लिए समर्पित है।" पूर्व में किए गए कर्मों का नाश करने के लिए उन्होंने विविध प्रकार की उग्र तपश्चर्याएँ की। साथ ही 11 अंगसूत्रों का अध्ययन भी किया।

जीवन के अंतिम समय में वे विपुलगिरि पर्वत पर गए और एक माह का संथारा धारण किया। समभाव में स्थिर रहकर उन्होंने कालधर्म को प्राप्त किया। फिर वे विजय नामक प्रथम अनुत्तर विमान में देव रूप में जन्मे। वहाँ का आयुष्य पूर्ण

करके वे महाविदेह क्षेत्र से सिद्ध होंगे और मोक्ष को प्राप्त करेंगे।

जीवदया और निष्काम सेवा मनुष्य को कैसे अमर बना देती है!
धन्य हैं करुणाप्रेमी, सेवाभावी, तपस्वी मेघकुमार!
वंदना हो जगत के तारनहार तीर्थंकर प्रभु महावीर को!

अपेक्षित प्रश्नोत्तर:

(1) मेघकुमार संथारा धारण करने के लिए कौन से पर्वत पर गए? (2) मेघकुमार के जन्म के समय उनकी माता को क्या इच्छा हुई थी? (3) सुमेरुप्रभ कितने हाथियों के नायक (युथपति) थे? (4) दीक्षा की प्रथम रात्रि में मेघमुनि ने कौन कौन से परिषह सहे? (5) महावीर प्रभु ने मेघकुमार को दीक्षा प्रदान कर पहला उपदेश क्या दिया? (6) मेघमुनि के पूर्व के तीसरे भव का वर्णन किजीए? (7) मेघमुनि के पूर्व के दुसरे भव का वर्णन किजीए? (8) प्रभु के कौन से बोध को सुनकर मेघकुमार को दीक्षा की भावना जगी? (9) मेघकुमार के माता, पिता और भाई का नाम क्या था? (10) पूर्व जन्म का वृत्तांत जानने के बाद मेघमुनि ने क्या किया?

2. मृगापुत्र दारक

(श्री दुःख विपाक सूत्र)

मृग नगर के राजा विजय की रानी मृगावती की कुक्षि से मृगापुत्र दारक का जन्म हुआ था। वह जन्म से ही अंधा, बहरा, गूंगा और अपाहिज था। उसके शरीर में अनेक प्रकार के रोग थे। उसके शरीर में न हाथ थे, न पैर; न कान, न आंख, और न ही नाक थी। केवल अंगों की आकृति मात्र थी। रानी मृगावती उस पुत्र को गुप्त रूप से एक भूमिगत तहखाने (भोंयरा) में रखकर उसका पालन-पोषण करती थी।

एक बार उस नगर में श्रमण भगवान महावीर पधारें। राजा विजय और नगर के अन्य जन भगवान के वंदन करने और देशना (उपदेश) सुनने गए। उसी नगर में एक जन्मांध पुरुष भी रहता था। उसने जब भगवान के आगमन का समाचार सुना, तो वह भी वंदन के लिए गया। उसे देखकर गौतम स्वामी ने भगवान से पूछा: "क्या इस नगर में इस जैसे और कोई जन्मांध पुरुष हैं?" भगवान ने कहा: "हाँ गौतम, इसी नगर के राजा का पुत्र भी जन्मांध आदि है।" भगवान की आज्ञा लेकर गौतम स्वामी उस पुत्र को देखने नगर में जाते हैं।

गौतम गणधर को अपने महल में आया देखकर रानी मृगावती वंदन-

नमस्कार कर उनसे आगमन का कारण पूछती हैं। गौतम गणधर ने कहा: "मैं आपके पुत्र को देखने आया हूँ।" तब रानी मृगावती अपने चारों सुंदर पुत्रों को सुसज्जित करके गौतम स्वामी के पास ले आती हैं। गौतम स्वामी कहते हैं: "मुझे इन पुत्रों को नहीं देखना, बल्कि आपके उस बड़े पुत्र को देखना है जो जन्मांध और गूंगा आदि है।" उनकी बात सुनकर रानी मृगावती आश्चर्यचकित होकर पूछती हैं: "कौन ऐसा ज्ञानी और तपस्वी है, जिसने मेरे इस छिपे हुए रहस्य को जान लिया?" गौतम स्वामी ने कहा: "मेरे धर्मगुरु, धर्माचार्य, श्रमण भगवान महावीर स्वामी परमज्ञानी, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी हैं। वे भूत, वर्तमान और भविष्य की समस्त बातों को पूर्ण रूप से जानते हैं। उन्हीं के श्रीमुख से आपके इस पुत्र की बात सुनकर मैं उसे देखने आया हूँ।"

इसी बीच मृगापुत्र के भोजन का समय हो गया था। रानी मृगावती ने गौतम गणधर को वहीं ठहराया और रसोई से भोजन सामग्री से भरी हुई एक लकड़ी की गाड़ी लेकर आईं। उन्होंने गौतम स्वामी से कहा: "कृपया मेरे पीछे पधारीए।" भोंयरे के पास पहुँचकर रानी ने चार परतों वाले कपड़े से अपने मुख को ढक लिया और गौतम स्वामी से भी कहा कि वे अपने मुख को मुखपत्ति से ढक लें। इसके बाद रानी ने भोंयरे (भूमिगत कक्ष) का द्वार खोला। उसमें से ऐसी दुर्गंध बाहर आने लगी जो मरे और सड़े हुए साँप, गाय आदि पशुओं की दुर्गंध से भी अधिक भयंकर, असहनीय, अशांतिदायक और अप्रिय थी। मृगावती के पीछे-पीछे गौतम स्वामी ने भी भोंयरे में प्रवेश किया और मृगापुत्र को देखा।

मृगा रानी द्वारा लाया गया आहार उस भूखे-प्यासे मृगापुत्र ने खाया। जैसे ही वह आहार उसके पेट में गया, वह खून और पस में परिवर्तित हो गया और उसे उल्टी हो गई। उल्टी किया हुआ वही आहार मृगापुत्र फिर से खाने लगा। गणधर गौतम स्वामी यह दृष्य देखकर गहरी सोच में पड़ गए, "अहो! यह बालक अपने पूर्वभव के घोर पापबंधन के कारण मनुष्य जन्म पाकर भी नर्क के समान दुख भुगत रहा है।"

गौतम स्वामी राजमहल से लौटकर भगवान महावीर के पास पहुँचे और प्रश्न किया: " पूर्वभव के कौन से कर्म के कारण यह मृगापुत्र नर्क के समान दुख भुगत रहा है?" भगवान ने उसका पूर्वभव का वृत्तांत सुनाया:

"इस भरतक्षेत्र में एक नगर था, शतद्वार। उसका राजा था धनपति। इस नगर के

दक्षिण-पूर्व में नदी और पर्वत के बीच स्थित एक क्षेत्र था, विजयवर्धमान। उस नगर के अधीन 500 गाँव आते थे। उसका अधिपति (राजप्रतिनिधि) था एक राठौड़, नाम था इक्काई। वह अत्यंत अधार्मिक, क्रूर और पापाचारी व्यक्ति था। उसने अपने अधीनस्थ 500 गाँवों पर अत्यधिक कर (टैक्स) लागू किया था। उस कर को वसूलने के लिए वह जनता को बहुत पीड़ा देता था। लोगों पर झूठे आरोप लगाकर उन्हें मारता-पीटता, दंड देता, यहाँ तक कि हत्या भी कर देता। लोगों का धन लूंट लेता या चोरों से लुंटवाता। तीर्थयात्रियों को मारता और लूंटता। इस प्रकार उसने इस जीवन में भारी पाप संचित किए। इन पापों के परिणामस्वरूप उसके शरीर में 16 भयंकर रोग उत्पन्न हो गए। कई उपचार कराने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ। मरणोपरांत वह प्रथम नरक में गया। वहाँ का आयुष्य पूर्ण कर अब वह मृगापुत्र के रूप में मनुष्य योनि में जन्म पाकर नरक जैसी पीड़ा भुगत रहा है।"

जिस दिन मृगापुत्र का जीव रानी के गर्भ में आया, उसी दिन से रानी पति को अप्रिय लगने लगी। राजा अब रानी की ओर देखना भी पसंद नहीं करते थे। गर्भ के कारण रानी की शारीरिक पीड़ा भी बढ़ती गई। रानी यह समझ चुकी थी कि पति की अप्रसन्नता और अपनी पीड़ा का कारण यही गर्भ है। रानी ने गर्भ गिराने के भी कई प्रयास किए, फिर भी वह असफल रही। जब मृगापुत्र दारक गर्भ में था, तब से उसकी आठ नसें शरीर के अंदर रक्त बहाती थी और आठ नसें शरीर के बाहर से पस (परु) बहाती थी। चार नसें कान के छिद्रों में बहती थी, उनमें से दो पस की और दो रक्त की थी। इसी प्रकार चार नसें आँखों के छिद्रों बहती थी। इस प्रकार कुल 16 नसें प्रवाहित हो रही थी।

जब से वह दारक गर्भ में था, तब से उसे भस्मक नामक रोग हुआ था, जिस के कारण जो भी आहार करता, वह तुरंत ही नष्ट होकर रक्त और पस में परिवर्तित हो जाता। इसके बाद वही बालक उसी रक्त और पस का सेवन करता। नौ माह पूर्ण होने पर मृगापुत्र का जन्म हुआ, परंतु वह केवल इंद्रियों के आकार रूप में था। जब वह जन्मा, जो कि एक जन्मांध बालक था। रानी ने तुरंत दासी को आज्ञा दी कि वह उसे कचरे के ढेर (उकरड़ा) में फेंक दे। परंतु वह दासी जाकर राजा विजय को यह बात बताती है। राजा विजय रानी मृगावती के पास आते हैं और उन्हें समझाते हैं: "यदि तुम अपने पहले बच्चे को यूं फेंक दोगी, तो संभव है कि भविष्य में तुम्हारा कोई भी

गर्भ स्थिर नहीं रहेगा। अतः तुम इसे गुप्त रूप से भोंयरे में रखकर उसका पालन-पोषण करो।" हे गौतम! वह मृगापुत्र आपने आज देखा है।

इस मनुष्य जन्म में 26 वर्ष का आयुष्य भुगतकर वह मृगापुत्र मरेगा और फिर सिंह बनेगा। वहाँ से प्रथम नरक में जाएगा, फिर वहाँ से निकलकर सरीसृप (साँप) बनेगा और मर कर वहाँ से द्वितीय नरक में जाएगा। वहाँ से निकलकर पक्षी बनेगा और मरकर तृतीय नरक में जाएगा। वहाँ से निकलकर सिंह बनेगा और फिर चतुर्थ नरक में जाएगा। वहाँ से उरग (साँप) बनेगा और मरकर पंचम नरक में जाएगा। वहाँ से निकलकर स्त्री बनेगा और मरकर छट्ठी नरक में जाएगा। वहाँ से पुरुष बनेगा और मरकर सातवीं नरक में जाएगा। वहाँ से निकलकर वह तिर्यंच गति (अधो गतियाँ: जलीय जीवों से लेकर पृथ्वीकाय पर्यंत) में लाखों बार जन्म-मरण को प्राप्त करेगा। अंत में वह महाविदेह क्षेत्र में मनुष्य जन्म प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करेगा।

अपेक्षित प्रश्नोत्तर:

(1) मृगापुत्र दारक कौन था? (2) उसका जन्म किस अवस्था में हुआ? (3) मृगापुत्र गर्भ में आया तब रानी को क्या विचार आते थे? (4) मृगापुत्र दारक पूर्वभव में कौन था? (5) रानी गौतम स्वामी को जहाँ लेकर गईं, उस स्थान का वर्णन करें। (6) मृगापुत्र गर्भ में था तब उसे कौन सा रोग हुआ था? (7) मृगा दारक का भविष्य क्या है?

3. दशार्णभद्र राजा

दशार्ण देश में दशार्ण नदी के किनारे स्थित दशार्णपुर नगर में दशार्णभद्र राजा राज्य करता था। एक बार श्रमण भगवान महावीर स्वामी चंपा नगरी से विहार करते हुए दशार्णपुर नगर पधारें। राजा के सेवकों ने जाकर राजा को प्रभु के आगमन का समाचार दिए। यह शुभ समाचार सुनकर राजा के हृदय में अमृत रस पिया हो, ऐसा दिव्य आनंद उत्पन्न हुआ।

राजा ने अपने मंत्रियों, सभासदों और राज-अधिकारियों को आज्ञा दी: "कल प्रभात में भगवान के दर्शन करने जाने जोरशोर से और सुंदर तयारी की जाए। मेरी सजावट और ठाट ऐसा होनी चाहिए, जैसी आज तक कोई भी भगवान के सत्कार और सन्मान करने इस प्रकार नहीं गया हो! नगर के राजमार्ग की सफाई और

सजावट उत्कृष्ट रूप में की जाए। सारा नगर शोभायमान होना चाहिए।"

भगवान महावीर दशार्ण नगर के बाहर एक बाग में विराजमान थे। देवताओं ने वहाँ समवसरण की रचना की। नगर का राजपथ राजसेवकों द्वारा सुसज्जित किया गया। नगर के द्वारों को भी भव्यता से सजाया गया। प्रातः राजा तैयार होकर हाथी पर सवार हुए और भगवान की वंदना के लिए रवाना हुए।

राजा के दोनों ओर चामर डुलाए जा रहे थे। मस्तक पर छत्र धारण किया हुआ था। राजा किसी देवता की भाति शोभायमान लग रहे थे। हज़ारों सेवक और सामंत वस्त्र और आभूषणों से सज्ज होकर राजा के पीछे आ रहे थे। उनके पीछे देवियों जैसी शोभायमान रानियाँ रथों में सवार होकर आ रही थी। राजसेवक राजा की गुणगाथाएँ गा रहे थे। हाथी, घोड़े, सैनिक और चतुरंगिणी सेना साथ चल रही थी। स्वर्गलोक से जैसे इन्द्र निकले हों, वैसे राजा नगर से बाहर निकले। राजा दशार्णभद्र गर्व और अभिमान से पूर्णतया फूले नहीं समा रहे थे।

राजा समवसरण के समीप पहुँचे, हाथी से उतरे और भगवान के दर्शन हेतु समवसरण में प्रविष्ट हुए। कमल की भाति भव्य जीवों को विकसित करने वाले, नूतन सूर्य के समान प्रभु की तीन प्रदक्षिणाएँ की, वंदना की और गर्व से फूले हुए मन से एक उपयुक्त स्थान पर बैठ गए।

उसी समय प्रथम देवलोक के इन्द्र सौधर्म (शक्रेन्द्र) ने अपने अवधिज्ञान से भगवान को दशार्ण नगर में देखा और साथ ही राजा के भीतर उमड़ा हुआ गर्व भी देखा। सौधर्म इन्द्र ने राजा का अभिमान दूर करने हेतु अपनी वैक्रिय शक्ति का प्रयोग किया।

शक्रेन्द्र ने आठ मुखों वाला एक दिव्य हाथी रचा। प्रत्येक मुख में आठ दंत-शूल (दाँत) बनाए। हर दाँत में एक पुष्करिणी (सरोवर) निर्मित किया। इन्द्र ने हर सरोवर में आठ कमल स्थापित किए। हर कमल में आठ पंखुड़ियाँ बनाई। हर पंखुड़ी पर 32 नाटकों की रचना की। ऐसे अद्भुत गजेन्द्र (श्रेष्ठ दिव्य हाथी) पर आरूढ़ होकर सौधर्म इन्द्र अपनी लक्ष्मी (ऐश्वर्य) के द्वारा सम्पूर्ण आकाशमंडल को व्याप्त कर गए।

इन्द्र की इस अद्भुत, अलौकिक ऋद्धि को देखकर दशार्णभद्र राजा स्तब्ध रह गए। उन्हें अपना अभिमान और वैभव, इन्द्र के वैभव के सामने निरर्थक और तुच्छ लगा। वे गहन लज्जा की स्थिति में आ गए। अपने अहंकार पर बहुत खेद हुआ। मन

दुखी हुआ और दुख में चिंतन करने लगे। उन्हें अपना वैभव अब व्यर्थ प्रतीत हुआ। उन्हें समझ आ गया कि मनुष्य चाहे जितना भी दिखावा करे, संसार में उससे अधिक शक्तिशाली, दिव्य और समृद्ध कोई न कोई होता ही है। इसलिए मनुष्य को अपनी शक्ति या धन का अभिमान नहीं करना चाहिए। जैसा दिखावा करके वे प्रभु को वंदन करने आए थे, उससे कई गुना अधिक वैभव से सौधर्म इन्द्र भगवान के दर्शन करने उपस्थित हुए थे।

ऐसे स्वरूपवान, समृद्ध इन्द्र को देखकर राजा ने सोचा, "मेरे जैसे में ऐसी वैभवशाली संपत्ति कहाँ से आ सकती है? इस इन्द्र ने पूर्वभव में अहिंसा, संयम और तपस्वरूप निरवद्य धर्म का आचरण किया होगा, तभी उसे यह ऋद्धि प्राप्त हुई है। तो मैं भी अब ऐसे धर्म की आराधना करुं।" ऐसे विचार करते-करते राजा के मन में संसार के असार पदार्थों और सुखों के प्रति वैराग्य उत्पन्न हुआ और यह भावना जागृत हुई कि, जिस संयम के पालन से मोक्षरूपी लक्ष्मी या देवगति की ऋद्धि प्राप्त होती है, वही संयम अब मैं भी लूँ।

राजा दशार्णभद्र ने अपने वस्त्र और आभूषणों का त्याग कर दिया। अपने केशों का लोच कर लिया और भगवान महावीर के पास जाकर दीक्षा ले ली। जब दशार्णभद्र राजा ने दीक्षा ले ली, तब सौधर्म इन्द्र स्वयं उनके पास आए और नमन करके बोले: "महात्मा! आपने दीक्षा ली है, इसलिए अब आप मेरे भी वंदनीय और पूजनीय बन गए हैं। आपकी आत्म-ऋद्धि के सामने मेरी भौतिक ऋद्धि कुछ भी नहीं है। आप धन्य हैं! अब आप छकाय को अभय प्रदान करने वाले, 17 प्रकार के संयम को पालन करने वाले बन गए हो इसलिए आपके त्याग और वैराग्य को मैं वंदन करता हूँ।"

दशार्णभद्र राजा ने इसके बाद संयम और तप की आराधना की और आत्मकल्याण कर लिया।

अपेक्षित प्रश्नोत्तर:

(1) दशार्णभद्र राजा ने सैनिकों को क्या आज्ञा दी? (2) राजा के मन का अभिमान किसने जाना और कैसे उसका नाश किया? (3) इन्द्र के वैभव का वर्णन करें।

5. काव्य विभाग

श्री भक्तामर स्तोत्र (1 से 8 कडी)

भक्तामर-प्रणत-मौलि – मणि - प्रभाणा-
मुद्योतकं दलित पाप-तमो-वितानम्।
सम्यक् प्रणम्य जिन -पाद - युगं युगादा-
वालम्बनं भव - जले - पततां जनानाम् ॥1॥

यःसंस्तुतः सकल वाङ्मय तत्त्वबोधा -
दुद्भूत बुद्धि - पटुभिः सुरलोक - नाथैः।
स्तोत्रैर् - जगत् -त्रितय चित्त हरै रुदारैः,
स्तोष्ये किलाहमपितं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥2॥

बुद्ध्या विनाऽपि विबुधा – र्चित - पादपीठ !
स्तोतुं समुद्यत – मतिर्विगत - त्रपोहम्।
बालंविहाय जल संस्थित मिन्दु - बिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ? ॥3॥

वक्तुं गुणान् गुण समुद्र ! शशांक - कान्तान्,
कस्ते क्षमः सुरगुरु - प्रतिमोपि बुद्ध्या?
कल्पान्त – काल - पवनोद्धत – नक्र - चक्रं,
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ? ॥4॥

सोहं तथापि तव भक्ति - वशान्मुनीश !
कर्तुं स्तवं विगत – शक्ति - रपि प्रवृत्तः।
प्रीत्यात्म – वीर्य - मविचार्य मृगो मृगेन्द्र,
नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ? ॥5॥

अल्प - श्रुतं, श्रुतवतां परिहास धाम,
त्वद् भक्तिरेव मुखरी कुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चारु चाम्र – कलिका – निकरैक - हेतुः ॥6॥

त्वत् - संस्तवेन भव – संतति - सन्निबद्धं,
पापं क्षणात् - क्षयमुपैति शरीरभाजाम्।
आक्रान्तलोक – मलि – नीलम - शेषमाशु,
सूर्यांशु - भिन्नमिव शार्वर - मन्धकारम् ॥7॥

मत्वेति नाथ ! तव संस्तवनं मयेद -
मारभ्यते तनु - धियापि तव प्रभावात्।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनी - दलेषु,
मुक्ता - फल - द्युति मुपैति ननूद - बिन्दुः ॥8॥

2. साधु वंदणा (78 से 111 कडी)

श्रेणिक ना बेटा, जाली आदिक तेवीस।
वीर पे व्रत लेई ने, पाल्यो विसवावीस ॥78॥

तप कठिन करी ने, पूरी मन जगीश।
देवलोके पहुंच्या, मोक्ष जासे तजी रीश ॥79॥

काकन्दी नो धन्नो, तजी बत्तीसे नार।
महावीर समीपे, लीधो संयम भार ॥80॥

करी छठ-छठ पारणा, आयंबिल उज्झित आहार।
श्री वीर बखाण्यो, धन धन्नो अणगार ॥81॥

एक मास संथारे, सर्वार्थसिद्ध पहुंत।
महाविदेह क्षेत्र मां, करसे भवनो अंत ||82||

धन्ना नी रीते, हुआ नव ही संत।
श्री अनुत्तरोववाई मां, भाखि गया भगवंत ||83||

सुबाहु प्रमुख, पांच-पांच सौ नार।
तजी वीर पे लीधा, पांच महाव्रत सार ||84||

चारित्र लेई ने, पाल्यो निर् अतिचार।
देवलोक पहुंच्या, सुखविपाके अधिकार ||85||

श्रेणिक ना पोता, पउमादिक हुआ दस।
वीर पे व्रत लेई ने, काढ्यो देह नो कस ||86||

संयम आराधी, देवलोक मां जई बस।
महाविदेह क्षेत्र मां, मोक्ष जासे लेई जस ||87||

बलभद्र ना नन्दन, निषधादिक हुआ बार।
तजी पचास अंतेउरी, त्याग दियो संसार ||88||

सहु नेमि समीपे, चार महाव्रत लीध।
सर्वार्थसिद्ध पहुंच्या, होसे विदेहे सिद्ध ||89||

धन्ना ने शालिभद्र, मुनीश्वरों नी जोड़।
नारी ना बंधन, तत्क्षण नांख्या तोड़ ||90||

घर-कुटुम्ब-कबीलो, धन-कंचन नी कोड़।
मास-मासखमण तप, टालसे भव नी खोड़ ||91||

श्री सुधर्मा ना शिष्य, धन-धन जंबू स्वाम।
तजी आठ अंतेउरी, मात-पिता धन-धाम ।।92।।

प्रभवादिक तारी, पहुंच्या शिवपुर-ठाम।
सूत्र प्रवर्तावी, जग मां राख्यूं नाम ।।93।।

धन ढंढण मुनिवर, कृष्णराय ना नंद।
शुद्ध अभिग्रह पाली, टाल दियो भव-फंद ।।94।।

वलि खंदक ऋषि नी, देह उतारी खाल।
परीषह सही ने, भव-फेरा दिया टाल ।।95।।

वलि खंदक ऋषि ना, हुआ पांचसौ शिष्य।
घाणी मां पील्या, मुक्ति गया तज रीश ।।96।।

संभूतिविजय-शिष्य, भद्रबाहु मुनिराय।
चौदह पूर्वधारी, चंद्रगुप्त आण्यो ठाय ।।97।।

वलि आर्द्रकुंवर मुनि, स्थूलीभद्र नंदिषेण।
अरणीक अइमुत्तो, मुनीश्वरों नी शेण ।।98।।

चौबीसे जिन ना मुनिवर, संख्या अठावीश लाख।
ऊपर सहस्त्र अड़तालीस, सूत्र परंपरा भाख ।।99।।

कोई उत्तम वांचो, मोंढे जयणा राख।
उघाड़े मुख बोल्यां, पाप लगे इम भाख ।।100।।

धन्य मरुदेवी माता, ध्यायो निर्मल ध्यान।
गज-होदे पायो, निर्मल केवल ज्ञान ।।101।।

धन आदीश्वर नी पुत्री, ब्राह्मी सुन्दरी दोय।
चारित्र लेई ने, मुक्ति गई सिद्ध होय ॥102॥

चोबीसे जिन नी, बड़ी शिष्यणी चौबीस।
सती मुक्ति पहुंच्या, पूरी मन जगीश ॥103॥

चोबीसे जिन ना, सर्व साध्वी सार।
अड़तालीस लाख ने, आठ से सत्तर हजार ॥104॥

चेड़ा नी पुत्री, राखी धर्म नी प्रीत।
राजीमती विजया, मृगावती सुविनीत ॥105॥

पद्मावती मयणरेहा, द्रौपदी दमयंती सीत।
इत्यादिक सतियां, गई जन्मारो जीत ॥106॥

चोबीसे जिन नां, साधु-साध्वी सार।
गया मोक्ष देवलोके, हृदय राखो धार ॥107॥

इण अढ़ी द्वीप मां, घरड़ा तपसी बाल।
शुद्ध पंच महाव्रत धारी, नमो नमो तिहुं काल ॥108॥

इण यतियों सतियों ना, लीजे नित प्रति नाम।
शुद्ध मन थी ध्यावो, एह तिरण नो ठाम ॥109॥

इण यतियों सतियों सूं, राखो उज्ज्वल भाव।
इम कहे ऋषि 'जयमल' एह तिरण नो दाव ॥110॥

संवत् अठारा ने, वर्ष साते सिरदार।
गढ़ जालोर मांही, एह कह्यो अधिकार ॥111॥